

‘ऐसा हुआ था ।’ आग (अग्नि) पूर्ण वर्तमान का जोतन करता है । कहते हैं कि भाषा चिन्तन का मूर्तरूप है—भारतीय चिन्तन में अग्नि मानि गया कभी भूत या भविष्य नहीं होती—वह निरन्तर वर्तमान रहती है—इसीलिये ‘अग्नि’ धातु का भूत या भविष्य में कोई रूप नहीं होता—‘अग्नि’ को आरंभ रूप में स्वीकार रूप रचना की प्रक्रिया पूरी कर दी जाती है—यह दूमा में जाता है । अभिप्राय यह कि ‘इतिहास’ हमारे यहाँ घटना और व्यक्ति की अपेक्षा उनकी तह में विद्यमान शाश्वत मानव धर्म का होता है—तीर्थंकर इत्यादि का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

भारतीय परम्परा में ‘धर्म’ को व्यक्ति से जोड़ना उसकी सदातनता, सार्वकालिकता और सार्वभौमता पर प्रश्नवाचक चिन्त लगाना है । अहिंसा धर्म का स्रोत है—वह अनेक रूपों में प्रवाहित होता आया है और रहेगा । मुनि नथमलजी ठीक कहते हैं कि वह अनादि है, ध्रुव है, नित्य है । यह बात दूसरी है कि सबको धारण करने वाले धर्म का आलोक जब क्षीण होने लगता है, तब कोई विशिष्ट महापुरुष उसको फिर प्रज्वलित करता है और इस प्रकार यह ‘व्यक्ति’ रूप से न रहकर सदातन वर्तमान ‘परम्परा’ का अंग बनकर उसी से एकाकार हो जाता है । इतिहास इसी ‘परम्परा’ का पुनरावधान है । ‘परम्परा’ विचार से मनुष्य को नहीं बाँधती, विचार को मनुष्य से बाँधती है—इसीलिये यह ‘परम्परा’ है—परात् परम् है—पर से भी पर है—श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर है—अविच्छिन्न और निरन्तर वर्तमान है—गतिशील है—जड़ और रुढ़ि नहीं । मिलिंद ने कहा कि बुद्ध ने प्राचीन मार्ग को ही खोला है—जो बीच में लुप्त हो गया था । गीताकार कृष्ण ने अपने धर्मोपदेश के विषय में कहा है—“एवम् परम्परा प्राप्तं योगं राजर्षयोः विदुः अर्थात् जिस धर्म का वे आद्वयान कर रहे हैं—उसके आद्य उद्गाता वे नहीं हैं—अपितु वह ‘परम्परा’ से चला आ रहा है । जैन परम्परा भी मानती है कि तीर्थंकर किसी एक देश या काल में नहीं होते । वे समय समय पर आते हैं और आवृत्त होते हुए ‘सत्य’ का पुनोपयोगी आद्वयान कर जनमानस को उस ओर प्रेरित करते हैं । ‘परम्परा’ में एक ही ‘सत्य’—जो अनन्त सम्भावनाओं से संवर्धित है—शब्दभेद से व्यक्त होता रहता है—पर मर्मज्ञ के लिये उसमें अर्थ-भेद नहीं होता ।

आत्म-कथा

गुण और दुःग दो अवस्थाएँ हैं। गुण की अवस्था में मानव भगवन्ता का अनुभव करते हुए विनाश की ओर प्रसरता होता है। दुःग-अवस्था में वह उन्नत होता जाता है और अपने आपको अवनति की ओर जाना हुआ अनुभव करता है। गुण-दुःग का यह चक्र अनवरत रूप में चलता रहता है। इसे हम काल-चक्र की संज्ञा भी दे सकते हैं। काल-चक्र को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है — (i) उत्सर्पिणीकाल एवं (ii) अवसर्पिणी काल। इन दोनों काल-चक्रों को पुनः छः छः भागों में विभक्त किया गया है जो 'आरा' कहलाता है। उत्सर्पिणीकाल में दुःग से गुण की ओर गति बढ़ती रहती है, तब अवसर्पिणीकाल में यह गति उलटी होकर गुण से दुःग की ओर अपने कद बढ़ाती है।

काल-चक्र के इन दोनों कालों में से प्रत्येक के तीसरे और चौथे आरे २४-२४ तीर्थंकर होते हैं। इस समय अवसर्पिणी काल का पाँचवाँ आरा चल रहा है। इसके पूर्व के तीसरे और चौथे आरे में चौबीस तीर्थंकरों की परंपरा उपलब्ध होती है। तीर्थंकरों की इस परम्परा के आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव थे जिन्हें भगवान् आदिनाथ के रूप में भी जाना जाता है। इस परम्परा में अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर विषयवंश भगवान् श्री महावीर हुए।

अब थोड़ा सा विचार 'तीर्थंकर' शब्द पर भी कर लेना उचित होगा। तीर्थंकर शब्द जैन शास्त्रीय और पारिभाषिक भी है। तीर्थंकर का गौ अतिविशाल और उसकी महिमा शब्दातीत है। इस शब्द की रचना तीर्थ + दो पदों के योग से हुई है। यहाँ 'तीर्थ' शब्द का अर्थ विशिष्ट एवं तत्काल रूप में ग्राह्य है। 'तीर्थ' शब्द का अर्थ संघ के रूप में लिया जाता है — जिसे 'धर्म-संघ' कहा जाता है। 'धर्म-संघ' के चार विभाग होते हैं। यथा-स साध्वी, श्रावक और श्राविका। जो इन चारों विभागों का संगठन कर इस संचालन करता है, वह चतुर्विध संघ की स्थापना करने वाला संस्थापक तीर्थंकर है।

मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक के लेखन में अनेक विद्वान् लेखकों के ग्रंथों का उपयोग हुआ है, उन सभी ज्ञात एवं अज्ञात विद्वान् लेखकों का भी मैं आभारी हूँ।

आवरण पृष्ठ के कलाकार श्री प्रकाश आर्टिस्ट, केसरगंज, अजमेर ने जिस लगन, निष्ठा एवं स्नेह से डिजाइन बनाई है उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री साकेत फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस उज्जैन के श्री माहेश्वरी बंधु एवं अन्य कार्यकर्त्ताओं को भी धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने कठिन परिश्रम करके विषम परिस्थितियों में पुस्तक का मुद्रण यथासमय करने में अपना पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया।

अंत में यही निवेदन है कि जिस प्रकार मुझे इस पुस्तक में आशीर्वाद, मार्गदर्शन, सहयोग, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला, यदि इसी प्रकार भविष्य में भी मिलता रहा तो मैं साहित्य सेवा करने में पीछे नहीं रहूँगा।

पुस्तक में रही कमियों की ओर ध्यान आकर्षित कराने वाले विद्वानों का स्वागत किया जावेगा।

पुस्तक की समस्त अच्छाइयों का श्रेय परमपूज्य श्री आचार्यप्रवरश्री, उपाध्यायमुनिश्री अन्य मुनिगण तथा प्रकाशन समिति को है और पुस्तक में रही प्रूफ सम्बन्धी त्रुटियों एवं अन्य कमियों के लिये मैं स्वयं उत्तरदायी हूँ।

मंगलकामनाओं एवं सहयोग की अपेक्षा के साथ—

छोटा बाजार, उज्जैन
जिला उज्जैन (म०प्र०)
२० अक्टूबर १९८०

विनम्र निवेदक
—तेजसिंह गोड़

अपना शोध-प्रबंध भी जैन इतिहास के विषय पर ही लिखा है । समिति पूर्ण-रूपेण विश्वस्त है कि डॉ. गोड़ प्रस्तुत इतिहास की अधूरी कड़ियों को संनिकट भविष्य में ही पूरा करने में सक्षम होंगे ।

ग्रंथ की उपयोगिता का निर्णय सुयोग्य पाठक ही करेंगे और उन्हीं के निर्णय से समिति इस ग्रंथ के प्रकाशन की सफलता का मूल्यांकन कर सकेगी ।

१५१, ट्रिप्लिकेन हाई रोड
मद्रास-६००००५
दिनांक : २६ अक्टूबर १९८०

निवेदक
सुगालचंद सिंघी
मंत्री :
जयध्वज प्रकाशन समिति,

३. भगवान् श्री अर्जुन

४८

पूर्वभय ४८, जन्म एवं माता-पिता ४८, नामकरण ४८, गृहस्थावस्था ४८,
दीक्षा एवं पारणा ४८, केवलज्ञान ४८, धर्म-परिवार ४९, परिनिर्वाण ४९

४. भगवान् श्री मंभन

५३

पूर्वभय ५३, जन्म एवं माता-पिता ५३, नामकरण ५३, गृहस्थावस्था एवं
दीक्षा ५४, विद्या एवं पारणा ५३, केवलज्ञान ५५, धर्म-परिवार ५५,
परिनिर्वाण ५६.

५. भगवान् श्री अभिनंदन

५७

पूर्वभय ५७, जन्म एवं माता-पिता ५७, नामकरण ५७, गृहस्थावस्था ५८,
दीक्षा एवं पारणा ५८, केवलज्ञान ५८, धर्म-परिवार ५८, परिनिर्वाण ६०

६. भगवान् श्री मुमति

६१

पूर्वभय ६१, जन्म एवं माता-पिता ६१, नामकरण ६२, गृहस्थावस्था ६३,
दीक्षा एवं पारणा ६४, केवलज्ञान एवं देशना ६४, धर्म-परिवार ६४, परि-
निर्वाण ६५,

७. भगवान् श्री पद्मप्रभ

६६

पूर्वभय ६६, जन्म एवं माता-पिता ६७, नामकरण ६७, गृहस्थावस्था ६७,
दीक्षा एवं पारणा ६७, केवलज्ञान एवं देशना ६८, धर्म-परिवार ६८,
परिनिर्वाण ६८.

८. भगवान् श्री सुपाश्व

७०

पूर्वभय ७०, जन्म एवं माता-पिता ७०, नामकरण ७०, गृहस्थावस्था ७१,
दीक्षा एवं पारणा ७१, केवलज्ञान एवं देशना ७१, धर्म-परिवार ७२,
परिनिर्वाण ७२,

९. भगवान् श्री चन्द्रप्रभ

७३

पूर्वभय ७३, जन्म एवं माता-पिता ७३, नामकरण ७३, गृहस्थावस्था ७४,
दीक्षा एवं पारणा ७४, केवलज्ञान एवं पारणा ७४, धर्म-परिवार ७५,
परिनिर्वाण ७५.

१०. भगवान् श्री सुविधि

७६

पूर्वभय ७६, जन्म एवं माता-पिता ७६, नामकरण ७७, गृहस्थावस्था ७७,
दीक्षा एवं पारणा ७७, केवलज्ञान ७८, धर्म-परिवार ७८, परिनिर्वाण ७८,
विशेष ७८,

१८. भगवान् श्री कुरु

११०

पूर्वमेव ११०, जन्म एवं माता-पिता ११०, नामकरण ११०, गृहस्थावस्था एवं चक्रवर्ती पद १११, दीक्षा एवं पारणा १११, केवलज्ञान ११२, धर्म-परिवार ११२, परिनिर्वाण ११३,

१९. भगवान् श्री अर

११४

पूर्वमेव ११४, जन्म एवं माता-पिता ११४, नामकरण ११५, गृहस्थावस्था एवं चक्रवर्ती पद ११५, दीक्षा एवं पारणा ११५, केवलज्ञान ११६, धर्म-परिवार ११६, परिनिर्वाण ११७,

२०. भगवती श्रीमल्ली

११८

पूर्वमेव ११८, जन्म एवं माता-पिता ११८, नामकरण १२०, अतीतिक मोक्ष श्री ग्यानि १२०, विवाह प्रसंग और प्रविशोध १२१, दीक्षा एवं पारणा १२३, केवलज्ञान १२४, धर्म-परिवार १२५, परिनिर्वाण १२५.

२१. भगवान् श्रीमुनिमुग्र

१२६

पूर्वमेव १२६, जन्म एवं माता-पिता १२६, नामकरण १२७, गृहस्थावस्था एवं चक्रवर्ती पद १२७, दीक्षा एवं पारणा १२७, केवलज्ञान १२८, धर्म-परिवार १२८, परिनिर्वाण १२८, विनिर्वाण १२८.

२२. भगवती श्रीममि

१३०

पूर्वमेव १३०, जन्म एवं माता-पिता १३०, नामकरण १३१, गृहस्थावस्था एवं चक्रवर्ती पद १३१, दीक्षा एवं पारणा १३१, केवलज्ञान १३२, धर्म-परिवार १३२, परिनिर्वाण १३२, विनिर्वाण १३२.

२३. भगवती श्रीममि

३३

पूर्वमेव ३३, जन्म एवं माता-पिता ३३, नामकरण १३५, वध, गोपनीयता एवं चक्रवर्ती पद १३५, विवाह प्रसंग १३५, दीक्षा एवं पारणा १३५, केवलज्ञान १३६, धर्म-परिवार १३६, परिनिर्वाण १३६, विनिर्वाण १३६.

१८. भगवान् श्री कृष्ण

११०

पूर्वभय ११०, जन्म एवं माता-पिता ११०, नामकरण ११०, गृहस्थावस्था एवं चरित्रकी पर १११, दीक्षा एवं पारणा १११, केवलज्ञान ११२, धर्म-परिवार ११२, परिनिर्वाण ११३,

१९. भगवान् श्री अर

११४

पूर्वभय ११४, जन्म एवं माता-पिता ११४, नामकरण ११४, पितृभक्त्या एवं चरित्रकी पर ११५, दीक्षा एवं पारणा ११५, केवलज्ञान ११६, धर्म-परिवार ११६, परिनिर्वाण ११७,

२०. भगवती श्रीमल्ली

११८

पूर्वभय ११८, जन्म एवं माता-पिता ११८, नामकरण १२०, अलौकिक सौन्दर्य की ग्यानि १२०, विवाह प्रसंग और प्रतियोग १२१, दीक्षा एवं पारणा १२३, केवलज्ञान १२४, धर्म-परिवार १२५, परिनिर्वाण १२५,

२१. भगवान् श्रीमुनिसुव्रत

१२६

पूर्वभय १२६, जन्म एवं माता-पिता १२६, नामकरण १२७, गृहस्थावस्था १२७, दीक्षा एवं पारणा १२७, केवलज्ञान १२८, धर्म परिवार १२८ परिनिर्वाण १२८, विशेष १२८,

२२. भगवान् श्रीनमि

१३०

पूर्वभय १३०, जन्म एवं माता-पिता १३०, नामकरण १३१, गृहस्थावस्था १३१, दीक्षा एवं पारणा १३१, केवलज्ञान १३२, धर्मपरिवार १३२ परिनिर्वाण १३२,

२३. भगवान् श्रीअरिष्टनेमि

३३

पूर्वभय १३३, जन्म एवं माता-पिता १३४, नामकरण १३५, वंश, गोत्र एवं कुल १३५, अनुपम सौन्दर्य एवं पराक्रम १३६, विवाह प्रसंग १३७, वाराणसी का लोटना १३८, दीक्षा एवं पारणा १४०, केवलज्ञान १४१, राजीमती की दीक्षा १४२, रथनेमि की प्रतियोग १४२, भविष्यकथन १४४ धर्म-परिवार १४५, परिनिर्वाण, १४६, विशेष १४६,

३- गुपमा-दुःपमा		दो कोड़ा कोड़ी मागरोपम
४- दुःपमा-गुपमा	—	एक कोड़ा कोड़ी मागरोपम में ४२००० वर्ष कम
५- दुःपमा	—	२१००० वर्ष
६- दुःपमा-दुःपमा	—	२१००० वर्ष

उत्सर्पिणी काल का क्रम अवसर्पिणी काल में ठीक विपरीत क्रम में रहता है। यथा —

उत्सर्पिणीकाल

१- दुःपमा-दुःपमा	—	२१००० वर्ष
२- दुःपमा	—	२१००० वर्ष
३- दुःपमा-गुपमा	—	एक कोड़ा कोड़ी मागरोपम में ४२००० वर्ष कम
४- गुपमा-दुःपमा	—	दो कोड़ा कोड़ी मागरोपम
५- गुपमा	—	तीन कोड़ा कोड़ी मागरोपम
६- गुपमा-गुपमा	—	चार कोड़ा कोड़ी मागरोपम

इस प्रकार इन दोनों अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों का एक पूर्ण काल चक्र होता है जो क्रम से सदैव चलता ही रहता है। एक का अवगमान दूसरे का प्रवर्तन करता है। इन दोनों अवधियों के उपविभाजन को देखने से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि एक में मानव जीवन क्षीण होता जाता है तो दूसरे में प्रगति की ओर बढ़ते हुए विकसित होता जाता है।

उपर्युक्त दो भागों के छः उपविभागों को भी दो भागों में विभक्त किया गया है। यथा —

(१) अवसर्पिणी काल के प्रथम तीन उपविभाग और उत्सर्पिणी काल के अंतिम तीन उपविभाग जिन्हें भोग-भूमि की संज्ञा दी गई।

(२) अवसर्पिणी काल के अंतिम तीन उपविभाग और उत्सर्पिणी काल के प्रथम तीन उपविभाग जिन्हें कर्म-भूमि की संज्ञा दी गई।

भोग-भूमि के अन्तर्गत आने वाले गुपमा-गुपमादि तीन काल खण्ड इसलिए भोग-भूमि कहलाते हैं क्योंकि इन काल खण्डों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यादि प्राणियों का जीवन भोग प्रधान रहता है। इस समय प्रकृति ही स्वयं इतनी

निर्मल-शीतल-मन्द गुणन्धित वायु का सतत् प्रवाह बना रहता है । सभी प्रकार के द्रव्यों से पृथ्वी परिपूर्ण रहती है । इस समय किसी को भी विषय की ललितता नहीं रहती, चारों ओर सुख और शांति का ही साम्राज्य दिखाई देता है । इस युग (आरे) के मानव का संस्कार चटकीला होता है, वे सुन्दर और चित्तानर्पक होते हैं । इस समय रोग और व्याधि का नामोनिष्ठान नहीं होता है । न राजा होते हैं न जाति-पाति के भगड़े होते हैं और न ही किसी प्रकार का कोई भेद भाव दृष्टिगोचर होता है और चींटी आदि क्षुद्र जन्तु भी नहीं होते । संतोष पूर्वक समताभाव में रहना ही इस समय के मानव का मुख्य स्वभाव होता है ।

वाणिज्य, व्यापार और व्यवसाय भी इस युग में कोई आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि इस युग के मानव की समस्त प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति कल्पवृक्षों में हो जाती है । समस्त पृथ्वी मण्डल दस प्रकार के कल्पवृक्षों में परिपूर्ण थी । इस समय के निवासियों को केवल संकल्प करने मात्र से ही मनोवांछित सामग्री प्राप्त हो जाती थी । ११ कल्पवृक्षों के दस प्रकार निम्न लिखित प्रकार के हैं —



खंग, उपांग पाकर मानव युग जीवितो है । तब मा पूर्ण जन्म के मान-गुणप्राप्ति महामं का ही फल समजना चाहिए । १

इस आरे की समाप्ति पर 'सुपमा' नामक दूसरा भाग आरम्भ होता है ।

(२) सुपमा काल:-

चार करोड़ करोड़ी सागरनीय के 'सुपमा-सुपमा' आरे की समाप्ति के बाद तीन करोड़ करोड़ी सागरनीय का 'सुपमा' अर्थात् केवल सुप नामा दूसरा आरा प्रारम्भ होता है । मनुषि इस आरे की स्थिति भी प्रायः प्रथम आरे की स्थिति के समान ही होती है तथापि अनुमर्षिणीकाल के प्रभाव से धनः धनः मानव जीवन हसोन्मुख दुःखा और सुग की मात्रा में कमी आई । दूसरे आरे के समस्त मनुष्यों की ऊंचाई चार हजार धनुष (चार मील) रह गई । आयु षट्ठकर दो पत्न्योपम हो गई । पृथ्वीस्थियों की संख्या १२८ रह जाती है । १२ काल के प्रभाव से जैसे जैसे इस आरे की अवधि व्यतीत होती जाती है वैसे वैसे ही इसके मुक्तों में भी कमी आती जाती है । इस आरे के फल भी इतने रसदार, मधुर और शक्तिदायक नहीं रहते जितने कि पहले आरे में होते थे । इस आरे में दो दिन बाद ही भोजन करने की इच्छा होती है । शक्ति में भी मनुष्य प्रथम आरे की तुलना में कमजोर हो जाता है । इस युग के मानव की शरीर की प्रकृति में भी परिवर्तन आया । ३

मृत्यु के छः महीने जब शेष रहते हैं, तब युगलनी एक पुत्र-पुत्री को जन्म देती है । पुत्र-पुत्री का ६४ दिन पालन किया जाता है । इसके बाद वे (पुत्र-पुत्री) दम्पती बनकर सुखोपभोग करते हुए विचरते हैं । मृत्यु के क्षण पर स्त्री को जंभाई और पुरुष को छोड़ आती है । मरकर वे देवगति में जाते हैं । इनके मृतक शरीर को क्षीरसागर में डालकर मृतक संस्कार किया जाता है । इस आरे में भी ईर्ष्या नहीं, वैर नहीं, जरा नहीं, रोग नहीं, क्रूरप नहीं, परिपूर्ण श्रंग, उपांग, पाकर सुखोपभोग करते हैं । पृथ्वी का स्वाद शकर जैसा रह जाता है । ४

१. जैनागम स्तोत्र संग्रह, पृ० १४५-४६

२. तिलोप, ४।३.६६-६७

३. भगवान महावीर का आदर्श जीवन पृ० १२

४. जैनागम स्तोत्र संग्रह, पृ० १४७

१० : जैनधर्म का संक्षिप्त इतिहास

उस आरे में कल्पवृक्ष कहीं भी नहीं दिखाई देते हैं। इस युग के मनुष्य भूत में मर्त्य जन्म रहते हैं। वे प्रतिदिन खाते हैं किन्तु पुनः पुनः उन्हें भोजन की आवश्यकता प्रतीत होती है। इस युग का मानव श्रमजीवी हो जाता है। भोजन अब साधारण पत्तों का रह जाता है। दुःख, रोग, शोक, संताप, भय, मोह, लोभ आदि में पूर्णपिशा अधिक वृद्धि हो जाती है। लोगों में भय और लोभी जैसे पापकर्म करने की प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है। विभिन्न प्रकार की कलाओं और विद्याओं की ज्ञाता भी इसी युग में होती है। दाग देने की प्रवृत्ति में भी वृद्धि हो जाती है। स्वर्ग-नरक की भावना भी लोगों के मन में अभी मग्न बनती होती है। भगवान् पापभक्षण को छोड़कर शेष सभी जेष्ठ जीवोंकर सभी आरे में हुए ११

(१२) ७ वला जाल :

२. भगवान् श्री ऋषभदेव (चिह्न-वृषभ)

जब किसी महापुरुष के वर्तमान का मूल्यांकन करना होता है तो उसके पूर्व यह आवश्यक होता है कि उसके भूतकाल पर भी दृष्टि डाली जावे। इस दृष्टि से यदि हम भगवान् श्री ऋषभदेव के जीवन का मूल्यांकन करते हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि उसकी पृष्ठभूमि पर भी विचार करें क्योंकि भगवान् श्री ऋषभदेव किसी एक जन्म की देन न होकर जन्म जन्मांतरों की साधना का प्रतिफल है। उनके पूर्वभव उनके क्रमिक विकास का ही प्रतिफल है। जैन ग्रंथों में भगवान् श्री ऋषभदेव के पूर्वभवों के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी मिलती है।

श्वेताम्बर ग्रंथ आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, त्रिपष्टि शलाका पुरुष चरित्र और कल्पसूत्र की टीकाओं में भगवान् श्री ऋषभदेव के तेरह भवों का विवरण मिलता है और दिगम्बराचार्य जिनसेन ने महापुराण में तथा आचार्य दामनंदी ने पुराणसार संग्रह में दस भवों का ही उल्लेख किया है। भगवान् श्री ऋषभदेव के तेरह भवों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

तेरह भवों के प्रथम भव में भगवान् श्री ऋषभदेव का जीव धन्ना सार्थवाह बना जिसने अत्यन्त उदारता के साथ मुनियों को धृतदान दिया और फलस्वरूप उसे सम्यक्त्व की उपलब्धि हुई। दूसरे भव में उत्तर कुरु भोग भूमि में मानव बने और तृतीय भवमें सौधमें देव लोक में उत्पन्न हुए। चतुर्थ भव में महाबल और इसी भव में श्रमण-धर्म भी स्वीकार किया। पांचवें भव में ललितांगदेव, छठे भव में वज्रजंघ, सातवें भव में उत्तर कुरु भोग भूमि में युगलिया, आठवें भव में गौधर्मकल्प में देव हुए। नववें भव में जीवानन्द नामक वैद्य हुए। इस भव में अपने स्नेहों साथियों के साथ कृमि-कुष्ठ रोग से ग्रस्त मुनि की चिकित्सा कर मुनि को पूर्ण स्वस्थ किया। मुनि के तात्त्विक प्रवचन-पीयूष का पान कर अपने साथियों सहित दीक्षा अंगीकार की और उत्कृष्ट संयम की साधना की। दशवें भव में यह जीव बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुआ। ग्यारहवें भव में

२० : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

होने लगे । आयु भी क्रमशः घटता हुआ तीन पत्य के स्थान पर दो पत्य और एक पत्य का हो गया । शरीर का परिमाण भी घटने लगा किन्तु भोजन की मात्रा पहले से अधिक हो गई । भूमि की स्निग्धता और मधुरता में पर्याप्त अन्तर आगया । आवश्यकताओं की पूर्ति न होने से मानव जीवन अस्त-व्यस्त हो गया । १

शासन-व्यवस्था :

कुलकरों की व्यवस्था के सम्बन्ध में पूर्व में संकेत किया जा चुका है । कुल की व्यवस्था व संचालन करने वाला सर्वे-सर्वा जो पूर्ण प्रतिभा सम्पन्न होता था उसे 'कुलकर' कहा गया है । २ कुलकर को व्यवस्था बनाये रखने के लिये अपराधी को दण्डित करने का भी अधिकार था ।

कुलकर विमलवाहन शासक के सद्भाव में कुछ समय तक अपराधों में न्यूनता रही, पर कल्पवृक्षों के क्षीणप्राय होने से युगलों का उन पर भरोसा बढ़ने लगा । एक युगलिया जिस कल्पवृक्ष का आश्रय लेता था उसी का आश्रय अन्य युगल भी ले लेता था इससे कलह व वैमनस्य की भावनाएँ तीव्रतर होने लगी । वर्तमान स्थिति का सिंहावलोकन करते हुए नीतिज्ञ कुलकर विमल-वाहन ने कल्पवृक्षों का विभाजन कर दिया । ३

दण्डनीति :

आवश्यकता आविष्कार की जननी है, कहावत के अनुसार जब समाज में अव्यवस्था फैलने लगी । जन-जीवन यस्त हो उठा, तब अपराधी मनोवृत्ति पर नियंत्रण करने के लिये उपाय खोजे जाने लगे और उसी के परिणामस्वरूप दण्डनीति का प्रादुर्भाव हुआ । ४ कहना अनुचित न होगा कि इससे पूर्व किसी प्रकार की कोई दण्डनीति नहीं थी क्योंकि उसकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं

१. श्रव्यभट्ट : एक परिशीलन द्वि० सं० पृ० ११६-११७

२. स्थानांग सूत्र वृत्ति, ७६७।५।१०।१

३. श्रव्यभट्ट : एक परिशीलन, पृ० १२१

४. दण्ड : अपराधनामनुष्ठानस्तत्र तस्य वा स एव वा नीतिः तयो दण्डनीति ।

स्थानांगवृत्ति-पृ० ३६८-१

जानने-जानने ॥

कुत्तरों की व्यवस्था के सम्बन्ध में पहले में सोचा किया था कुछ है। कुत्तों की व्यवस्था में सम्बन्ध में सोचा गया सर्व-पक्षों को पूर्ण परिभाषा सम्बन्ध में था उसे 'कुत्तर' कहा गया है। १२ कुत्तरों की व्यवस्था करने के लिए व्यवस्था को दिला करने का भी उद्देश्य था।

कुत्तर विभाजन नामक के सम्बन्ध में कुछ समय तक अपराधी में न्यूनता रही, पर कुत्तरों के शीघ्रप्राप्त होने में सुगमों का उन पर सम्बन्ध बढ़ने लगा। एक सुगमिता जिस कुत्तरों का आश्रय लेता था उसी का आश्रय अन्य सुगम भी ले लेता था उससे कहा गया वेमलस्य को आश्रयों, तीव्रतर होने लगी। वसंमान स्थिति का मित्रावलीकन करने हुए, नीतिज्ञ कुत्तर विमल-वाहन ने कुत्तरों का विभाजन कर दिया। १३

दण्डनीति :

आवश्यकता आविष्कार की जननी है, कहावत के अनुसार जब समाज में अव्यवस्था फैलने लगी। जन-जीवन प्रस्ता हो उठा, तब अपराधी मनोवृत्ति पर नियंत्रण करने के लिये उपाय सोचे जाने लगे और उसी के परिणामस्वरूप दण्डनीति का प्रादुर्भाव हुआ। १४ कहना अनुचित न होगा कि इससे पूर्व किसी प्रकार की कोई दण्डनीति नहीं थी क्योंकि उसकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं

१. ऋषभदेव : एक परिशीलन द्वि० सं० पृ० ११६-११७

२. स्थानांग सूत्र वृत्ति, ७६७।५१०।१

३. ऋषभदेव : एक परिशीलन, पृ० १२१

४. दण्ड : अपराधिनामनुशासनस्तत्र तस्य वा स एव वा नीतिः नयो दण्डनीति।
स्थानांगवृत्ति-प० ३६६-१

धिकार नीति :

समाज में अभाव बढ़ता जा रहा था । उसके साथ ही अगंतोप भी बढ़ रहा था जिसके परिणामस्वरूप उच्छृंखलता और भुट्टता का भी एक प्रकार में विकास हो हो रहा था । ऐसी स्थिति में हाकार और माकार नीति में कब तक व्यवस्था चल सकती थी । एक दिन माकार नीति भी विफल होती दिखाई देने लगी और अब उसके स्थान पर किसी नई नीति की आवश्यकता प्रतीत होने लगी । तब माकार नीति की असफलता से 'धिकार नीति' का जन्म हुआ । यह नीति कुलकर प्रेमनजित से लेकर अंतिम कुलकर नाभि तक चलती रही । इस अधिकार नीति के अनुसार अपराधी को क्षाना कहा जाता था— 'धिक् अर्थात् तुम्हें अधिकार है, जो ऐसा कार्य किया ।'

इस प्रकार यदि अपराधों के मान में वर्गीकरण किया जाये तो वह निम्नानुसार होगा—

जवन्य अपराध वालों के लिये 'निन्द'

मध्यम अपराध वालों के लिये 'निषेध' और

उत्कृष्ट अपराध वालों के लिये 'तिरस्कार' सूचक दण्ड

मृत्यु दण्ड से भी अधिक प्रभावशाली थे । 2

कुलकर नाभि तक अपराधवृत्ति का कोई विशेष विकास नहीं हुआ था क्योंकि उस युग का मानव स्वभाव से सरल और हृदय से कोमल था । 3

कुलकर नाभिराय :

अन्य कुलकरों से नाभिराय अधिक प्रतिभा सम्पन्न थे । समुन्नत शरीर, अप्रतिम रूप-सौंदर्य अपार बल वैभव के कारण वे सभी में अप्रतिम थे ।...उनका युग एक संक्रांतिकाल था । भोग भूमि समाप्त होकर कर्मभूमि का प्रारंभ हो चुका था । नये प्रश्न थे, नये हल चाहिये थे । नाभिराय ने उनका समाधान

1. स्वानांगवृत्ति प० ३६६-धिगधिक्षेपार्थ एव तस्य करणं उच्चारण धिक्कारः ।
2. ऋषभदेवः एक परिशीलन, पृ० १२३
3. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, यशस्कार- मू० १४

यहाँ यह स्मरणीय है कि अग्न मन् तीर्थंकरों की माताएँ प्रथम स्वप्न में गजराज की मुद्रा में प्रवेष्ट करती हुई देवती हैं, परन्तु ऋषभदेव की माता मरुदेवी ने प्रथम स्वप्न में वृषभ को अपने मुद्रा में प्रवेष्ट करने देखा ।

स्वप्न दर्शन के पश्चात् जाग्रत हो माता मरुदेवी नाभि कुलकर के पास आई और अलौकिक स्वप्नों का फल पूछा । नाभिराजा ने अपनी तीक्ष्ण विचार शक्ति से स्वप्नों का प्रतिफल बताते हुए कहा— 'तुम एक अलौकिक पुत्र-रत्न को प्राप्त करोगी ।' १

जन्म :

श्वेताम्बर ग्रंथों (जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, कल्पसूत्र, आचर्य्यकनिर्युक्ति, आवश्यक चूणि, त्रिपष्टि-शलाका पुरुष चरित्र आदि) के अनुसार सुखपूर्वक गर्भकाल पूर्ण कर चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन भगवान् श्री ऋषभदेव का जन्म हुआ और दिगम्बराचार्य श्री जिनसेन के अनुसार जन्मतिथि नवमी है । २ यह सम्भव है कि उदयास्त तिथि की मान्यता की दृष्टि से ऐसा तिथि भेद लिखा गया हो । इसके अतिरिक्त तो और कोई दूसरा कारण दिखाई नहीं देता है ।

जिस समय भगवान् श्री ऋषभदेव का जन्म हुआ, सभी दिशाएँ ज्ञात थीं । प्रभु के जन्म से सम्पूर्ण लोक में उद्योत हो गया । क्षणभर के लिये नारक भूमि के जीवों को भी विश्रान्ति प्राप्त हुई । छप्पन दिक्-कुमारियों और देव देवेन्द्रों ने आकर जन्म महोत्सव मनाया । ३ जन्माभिषेक की विशेष जानकारी के लिये जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, आवश्यक चूणि, चउप्पन्न महापुरिस चरियं, एवं त्रिपष्टि शलाका पुरुष चरित्र दृष्टव्य है ।

नामकरण :

भगवान् ऋषभदेव का जीव जैसे ही माता मरुदेवी के गर्भ में आया था, वैसे ही माता मरुदेवी ने चौदह महास्वप्न देखे थे । उनमें सबसे पहले 'वृषभ' का स्वप्न था और जन्मोपरांत बालक के उग्र स्थल पर 'वृषभ' का शुभ चिन्ह

१. ऋषभदेव : एक परि०, पृ० १२६, त्रिपष्टि १।२।२२६, आव० चू० पृ० १३५
२. महापुराण — १३।१-३ पृ० २८३
३. जैन धर्म का मौलिक इति०, भा० १ पृ० १४

वंश और गोत्र :

उस समय का मानव समाज किसी कुल, जाति अथवा वंश में विभक्त नहीं था। इसलिये श्री ऋषभदेव की कोई जाति या वंश नहीं था। जिस समय श्री ऋषभदेव की आयु एक वर्ष से कुछ कम थी, वे अपने पिता की गोद में बैठे हुए क्रीड़ा कर रहे थे, तब इन्द्र अपने हाथ में इक्षुदण्ड (गन्ना) लेकर उपस्थित हुए। श्री ऋषभदेव ने इन्द्र के अभिप्राय को समझकर इक्षुदण्ड लेने के लिये अपना प्रसास्त लक्षण युक्त दाहिना हाथ आगे बढ़ाया। उस पर इन्द्र ने इक्षु भक्षण की रीति देखकर उनके वंश का नाम इक्ष्वाकु वंश रखा।¹¹ इनकी जन्मभूमि भी तभी से इक्ष्वाकु भूमि के नाम से प्रसिद्ध हुई।¹² और गोत्र काश्यप कहा गया।¹³

अकाल मृत्यु :

श्री ऋषभदेव का बाल्यकाल अति आनंद से व्यतीत हुआ। शनैः शनैः वे दस वर्ष के हुए तभी एक अपूर्व घटना घटी। एक युगल अपने नवजात पुत्र पुत्री को ताड़वृक्ष के नीचे गुलाकर स्वर्ण क्रीड़ा हेतु प्रस्थान कर गया। भवितव्यता से एक बड़ा परिपक्व ताड़फल बालक के ऊपर गिरा, मर्म-प्रदेश पर प्रहार होने से असमय ही वह बालक मरकर स्वर्ग सिंघार गया। यह प्रथम अकाल मृत्यु उस अवसर्पिणीकाल के तृतीय आरे में हुई।¹⁴ योगलिक माता-पिता ने बड़े लाड़ से अपनी इकलौती कन्या का पालन किया, अत्यन्त सुन्दर होने से उसका नाम भी 'सुनन्दा' रख दिया गया। कुछ समय पश्चात् उसके माता-पिता की भी मृत्यु हो गई। इस कारण यह बालिक पथभ्रष्ट मृगी की भांति इधर उधर परिभ्रमण करने लगी। अन्य योगलिकों ने नाभिराजा से उक्त गमस्त वृत्तांत कह सुनाया। श्री नाभि ने उस लड़की के विषय में यह कह कर कि यह ऋषभ की पत्नी बनेगी, अपने पास रख लिया।¹⁵

१. आश्व० निर्युक्ति गा० १८६

२. आश्व० चूणि - पृ० १५२

३. आश्व० मन्त्र० पूर्वभाग पृ० १६२

४. इस अकाल मृत्यु की घटना को जैनधर्म में आश्चर्यजनक माना गया है, क्योंकि भोग भूमि के मनुष्य परिपूर्ण आयु भोग कर ही मरते हैं।

५. ऋषभदेव : एक परिशीलन, पृ० १३३-३४

भारत और बाहुवर्णी का विनाश :

योगनिक युग में भारत और बह्वर्ण का सामान्य एक सामान्य विनाश था । राज जिसे अत्यन्त देव न अभीष्टिम्बत समझा जाता है उस समय यह एक प्रतिष्ठित एवं सर्वमान्य प्रथा थी । भगवान् भी ऋषभदेव ने मुन्दरी के माग पाणिग्रहण कर इस प्रथा का उन्नेद दिया तथा कालांतर में इसे और गुरुक रूप देने के लिये न योगनिक युग का मूलतः नाश करने के लिये जब भारत और बाहुवर्णी युवा हुए तब भारत महान् ब्राह्मणों का पाणिग्रहण बाहुवर्णी से करवाया और बाहुवर्णी महान् मुन्दरी का पाणिग्रहण भारत से करवाया । इन विवाहों का अनुकरण करने जनता ने भी भिन्न मोन में उत्पन्न कन्याओं को उनके माता-पिता आदि अभिभावकों द्वारा दान में प्राप्त कर पाणिग्रहण करना प्रारम्भ किया । इस प्रकार एक नवीन परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ । 12

राज्याभिषेक :

अंतिम कुलकर नामि के समय में ही जब उनके द्वारा अपराध निरोध के लिये निर्धारित की गई धिक्कार नीति का उल्लंघन होने लगा और अपराध निवारण में उनकी नीति प्रभावहीन सिद्ध हुई, तब युगलिक लोग घबराकर ऋषभदेव के पास आए और उन्हें वस्तुस्थिति का परिचय कराते हुए सहयोग की प्रार्थना की ।

ऋषभदेव ने कहा—'जनता में अपराधी मनोवृत्ति नहीं फैले और मर्यादा का यथोचित पालन हो इसके लिये दण्ड व्यवस्था होती है, जिसका संचालन

१. ऋषभदेव : एक परि०, पृ० ३५-३६

२. ऋषभदेव : एक परिशीलन पृष्ठ १३६-१३७.

हो सकती, अतः जब काल की स्निग्धता कुछ कम हुई तब उन्होंने लकड़ियों को घिसकर अग्नि उत्पन्न की और लोगों को पाक-कला का ज्ञान कराया ।

चूर्णिकार ने लिखा है कि संयोगवश एक दिन जंगल के वृक्षों में अनायास संघर्ष हुआ और उससे अग्नि उत्पन्न हो गई । वह भूमि पर गिरे सूखे पत्ते और घास को जलाने लगी । युगलियों ने उसे रत्न समझकर ग्रहण करना चाहा किन्तु उसको दूते ही जब हाथ जलने लगे तो वे अंगारों को छोड़कर ऋषभदेव के पास आये और सारा वृत्तांत कह सुनाया । श्री ऋषभदेव ने कहा— 'आसपास की घास साफ करने से आग आगे नहीं बढ़ सकेगी ।' उन लोगों ने वैसा ही किया और आग का बढ़ना बन्द हो गया ।

फिर भगवान् ऋषभदेव ने बताया कि इसी आग में कच्चे धान्य को पकाकर खाया जा सकता है । युगलियों ने आग में धान्य को डाला तो वह जल गया । इस पर युगलिक समुदाय पुनः श्री ऋषभदेव के पास आया और बोला कि आग तो स्वयं ही सारा धान्य खा जाती है । तब भगवान् ने मिट्टी गीली कर हाथों के कुंभ स्थल पर उसे जमाकर पात्र बनाया और बोले कि ऐसे वर्तन बनाकर धान्य को उन वर्तनों में रखकर आग पर पकाने से वह जलेगा नहीं । इस प्रकार वे लोग आग में पकाकर खाद्य तैयार करने लगे । मिट्टी के वर्तन और भोजन पकाने की कला सिखाकर ऋषभदेव ने उन लोगों की समस्या हल की इसलिये लोग उन्हें विधाता एवं प्रजापति कहने लगे । सब लोग जाति में जीवन व्यतीत करने लगे ।

लोक-व्यवस्था :

इस जिल्प के अनन्तर अन्य जिल्लों के लिये भी द्वार खुल गया । ग्रामों व नगरों का निर्माण करने के लिये उन्होंने मकान बनाने की कला सिखाई ।

कार्य करने करने मनुष्यों का मन उचट जाय तो मनोरंजन के लिये विम-जिल्प आदि का भी आविष्कार किया । कल्पवृक्षों के अभाव में वस्त्र की समस्या सामने उपस्थित हुई तो भगवान् ने वस्त्र निर्माण की शिक्षा दी । बन्ध, नाग्न आदि की अभिवृद्धि में जब शरीर उभट व असोभन दिखाई दिया तो भगवान् ने नापितजिल्प का प्रशिक्षण दिया ।

दान :

संसार त्याग की भावना से अभिनिष्क्रमण से पूर्व श्री ऋषभदेव ने प्रति-दिन प्रभात की पुण्यवेला में एक वर्ष तक एक करोड़ आठ लाख मुद्राएँ दान दी ।^१ इस प्रकार एक वर्ष की अवधि में श्री ऋषभदेव द्वारा तीन अरब अठ्ठासी करोड़ और अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान दिया गया ।^२ दान देकर आपने जन-जन के मानस में यह भावना भर दी कि धन के योग का महत्व नहीं है, वरन् उसके त्याग का महत्व है ।

महाभिनिष्क्रमण :

भारतीय इतिहास में चैत्र कृष्ण अष्टमी का दिन ३ सदैव स्मरणीय रहेगा । जिस दिन सम्राट श्री ऋषभदेव राज्य वैभव को ठुकराकर, भोग-विलास को तिलांजलि देकर, परमात्मा-तत्त्व को जाग्रत करने के लिये 'मर्त्यं सावर्ज्जजोगं पञ्चकरवामि' सभी पाप-प्रवृत्तियों का परित्याग करता हूँ, इस भव्य भावना के साथ विनीता नगरी से निकलकर सिद्धार्थ उद्यान में, भ्रमणक वृक्ष के नीचे उत्तरापाढ़ नक्षत्र में चतुर्थ प्रहर के समय, पण्ड भक्त के तप से मुक्त होकर सर्वप्रथम परित्राट् बने । शीपंस्य वालों की तरह पापों का भी जड़ मूल में परित्याग करना है । अतः उन्होंने सिर के बालों का चतुर्मुष्टिः मुन्चन किया । उस समय भगवान् के प्रेम से प्रेरित होकर उपवंश, भोग-वंश, राजन्य वंश और क्षत्रिय वंश के चार हजार साधियों ने भी उनके साथ ही संयम श्रंगीकार किया ।^४ यद्यपि भगवान् श्री ऋषभदेव ने उन चार हजार साधियों को प्रश्रय प्रदान नहीं की, लेकिन उन्होंने भगवान् का अनुसरण कर स्वयं ही मुन्चन आदि क्रियाएँ की ।^५

साधुचर्या :

दीक्षा श्रंगीकार करने के पश्चात् भगवान् परिवार, सहित, गमाज व देश के कर्नेयों में बहुत ऊपर उठ गये थे । उन्होंने अपने स्वत्व को अभिन्न विषय

१. आश्व० निर्गु० गा० २३६, त्रिप्रष्टि० १।३।२३.

२. त्रिप्रष्टि० १।३।२४

३. आश्व० निर्गु० गा० ३३६

४. जप्त्० प्र० शमोत्प० ३६।००-५१

५. ऋषभदेव : एक परिकीर्तन, पृ० १६०-६१

माता मरदेवी की मुक्ति

माता मरदेवी अपने मातापिता पुत्र के दुर्गों में के लिए विरक्तता में आसक्ति थी। जब अपने भय के भयवान् का आगमन के कल तब मातापिता का समाचार मिला तो अपने कुछ मित्रों के साथ ही श्रुति आ गई। अपने मित्र पुत्र की देवता के लिये जा रहा तो नहीं। भय के माता पर भी वैराग्य पड़ो मत मनाने लगी। माता ने देखा कि भयानक वृद्ध के भी विरक्ततापन्न पुत्र आगमन के भी चरणों में भस्म देती-देता समझ कर रहे हैं - पूजा पर्वना कर रहे हैं और प्रभु देवता दे रहे हैं। यह मन देवता पर माता निर्भर हो गई। वास्तव्य भावना में परिवर्तित हो गया। विरक्तता माता मरदेवी उन्मत्त घुक्न ध्यान में गीन होकर गिर चुक हो गई। कर्मों का आकर्षण हट गया और वह मुक्त हो गयी। दुर्गम निर्गम पद की, उपलब्धि उमे महान हो हो गई। स्वयं भगवान् श्री आत्मदेव ने योगना की कि इस गुण की समग्रम मुक्ति मामिनी मरदेवी सिद्ध भगवती हो गयी है।

देशना एवं तीर्थ स्थापना :

केवल शानी और धीतरागी बन जाने के उपरांत भगवान् श्री आत्मदेव पूर्ण कृत कृत्य हो चुके थे। वे चाहते तो एकांत साधना से भी अपनी मुक्ति कर लेते फिर भी उन्होंने देशना दी। इसके कई कारण थे। प्रथम तो यह कि जब तक देशना देकर धर्म तीर्थ की स्थापना नहीं की जाती तब तक तीर्थकर नाम कर्म का भोग नहीं होता। दूसरा जैसा कि प्रदन व्याकरण सूत्र में कहा

१. यही० २४।८।५७३

२. विस्तृत विवरण के लिये देखें :

(१) आचम्यक पूर्णि पृ० १८२

(२) आचम्यक मल० य० पृ० २२९

(३) त्रिपष्टि०, ११३।५२८-५३०-५३५

(४) आत्मदेव : एक परि० पृ० १७६-७७

(५) जैन धर्म का मौ० इति० प्र० भा. पृ० ३६-४१

मरीचि : प्रथम परिव्राजक :

सम्राट् भरत के पुत्र मरीचि ने भगवान् की सेवा में प्रस्थान किया। भगवान् के शिष्यों में ही जीना चलन का भी और सीधित होकर साधना प्रारम्भ की। साधना का मार्ग जिना कहते हैं और उस मार्ग में जाने वाली परीपह-बाधाएँ जितनी कठोर होती हैं उतनी ही कोमल कुमार मरीचि की काया थी। फलतः उन भीषण व्यर्थों और प्रचण्ड उपमर्ग-परीपहों को वह भेल नहीं पाया तथा कठोर साधना की पगछेरी में प्लुत हो गया। उसके समक्ष समस्या आ खड़ी हुई - न तो वह उस संयम का निर्वाह कर पा रहा था और न ही पुनः गृहस्थ मार्ग पर आसक्त हो पा रहा था। वह समस्या का निदान खोजने लगा और अपनी स्थिति के अनुरूप उसने एक नवीन वीतराग स्थिति की मर्यादाओं की कल्पना की। श्रमण धर्म से उसने सम्भाव्य विन्दुओं का चयन किया और उनका निर्वाह करते हुए वैराग्य के एक नवीन क्षेत्र में विचरण करने का निश्चय किया। उसका यह नवीन रूप "परिव्राजक वेश" के रूप में प्रकट हुआ। यहीं से परिव्राजक धर्म की स्थापना हुई जिसका उन्नायक मरीचि था और वहीं प्रथम परिव्राजक था। परिव्राजक मरीचि बाद में भगवान् के साथ विचरण करता रहा। मरीचि ने अनेक जिज्ञासुओं को दशविधि श्रमण धर्म की शिक्षा दी और भगवान् का शिष्यत्व स्वीकार करने को प्रेरित किया। सम्राट् भरत के एक प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने कहा था कि इस सभा में एक व्यक्ति ऐसा भी है जो मेरे बाद चलने वाली चौबीस तीर्थकारों की परम्परा में अंतिम तीर्थकर बनेगा और वह है मरीचि। अपने पुत्र के उत्कर्ष से अवगत

१. कल्पसता, २०७, कल्पद्रुमसवलिका, १५१

२. ऋषभदेव : एक परि० पृ० १८०

असह्य हुए विमान के ध्वज ध्वज वाहुवली ने मुँह करने के लिए। वह भी देश की सीमा पर जा पहुँचे। वाहुवली की आवाज सुनी गयी। मन्नाट ने मुँह के मैदान में जा गया। दोनों का मन एक-दूसरे का निकल रहा था। वह निर्णय नहीं हो सका। अतः वाहुवली ने मुँहान पर मन्नाट निर्णय किया गया कि अपने साथ जाऊँ। मन्नाट ने मुँहान पर दोषों की विचारण मुँह का निर्णय कर लिया। वह एक रश्मि मुँह, वाहुवली, वाहुवली, मुँहान मुँह, और एक मुँह हुए। वह सभी ने वाहुवली की ही निर्णय हुई। उसमें भरत ने आजीवन मन्नाट मन्नाट मुँहान वाहुवली के निर्णयान्तर करने के लिये चक्र का प्रयोग किया। इस पर वाहुवली अचरित हो गये। उन्होंने वाहुवली ने चक्र को पकड़ना चाहा किन्तु चक्र वाहुवली के आग्रहान्तर प्रक्षिप्त कर मुँहान भरत के पास जा गया। वह देखाकर सभी उपस्थित जन आश्चर्यचकित रह गये। वाहुवली की प्रशंसा में गगनमण्डल गूँज उठा। भरत को अपने हित पर लज्जित होना पड़ा। १५

वाहुवली ने क्रुद्ध होकर भरत पर प्रहार करने के लिये अपनी प्रबल मुट्ठी उठाई। इसे देखकर आवाज गूँज उठी—“मन्नाट भरत ने भूल की है, किन्तु आप भूल न करें। छोटे भाई के द्वारा ज्येष्ठ भ्राता की हत्या अनुचित

१. त्रिपट्टि० १।५।४।६७,

२. आवश्यक घूर्णन, पृ० २१०

३. त्रिपट्टि०, पर्व १ सर्ग ५

४. वही, १।५।७।२२-७२३

५. वही, १।५।७।४६

भरत को केवल ज्ञान प्राप्ति एवं निर्वाण :

समस्त भारत के एक ही सम्राज्य का मन्त्राधीन होकर भी सम्राट भरत के मन में न तो वैभव के प्रति भागिन का भाव था और न ही अधिकारों के लिये विघ्ना का। गुप्तमन के कारण ने उनके मोक्षमार्ग हो गये थे कि उन्हीं के नाम को आधार मानकर इस देश को शास्त्रवर्ण कहा जाने लगा। गुरीषंकाव तक वे शासन करते रहे, किन्तु दागिनापूति की कामना में ही, अन्यथा अधिकांश, सत्ता, ऐश्वर्य आदि के भाग की कामना तो उनमें रंजमात्र भी नहीं थी।

भगवान् श्री ऋषभदेव विचरणा करते करते एक समय राजधानी विनीता नगरी में पधारे यहाँ भगवान् से किमी जिज्ञासु द्वारा एक प्रश्न पूछा गया जिसके उत्तर में भगवान् ने यह व्यक्त किया कि चक्रवर्ती सम्राट भरत इसी भव में मोक्ष की प्राप्ति करेंगे। भगवान् की वाणी अक्षरणः सत्य घटित हुई। इसका कारण यही था कि साम्राज्य के भोगोपभोगों में वे मात्र तन में ही संलग्न थे, मन में तो वे सर्वथा निःलिप्त थे। सम्पद्-दर्शन के आलोक से उनका चित्त जगमग करता रहता था। उन्हें अंततः केवल ज्ञान, केवल दर्शन उपलब्ध हो गया। कालान्तर में उन्हें निर्वाण पद की प्राप्ति हो गई और वे सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गये।

धर्म-परिवार :

जिस प्रकार भगवान् श्री ऋषभदेव का गृहस्थ परिवार विनाश था, उसी प्रकार उनका धर्म-परिवार भी अति-विनाश था। भगवान् के पावन प्रवचनों को सुनकर चौरासी हजार श्रमण बने और तीन लाख श्रमणियाँ बनीं। तीन लाख श्रावक और पाँच लाख चौपनहजार श्राविकाएँ हुईं।

१. चौबीस तीर्थंकर : एक पर्व ० पृ० ११ विस्तार के लिये देखें:-

- (१) जैनधर्म और दर्शन-मुनिनियमन (२) जैन दर्शन के मौलिक तत्व
- (३) आवश्यक नियुक्ति गा० ४३६, (४) आव० चूणि पृ० २२७
- (५) ऋषभदेव . एक परिशीलन.

२. कल्पसूत्र-१६७-५८

३. भगवान् श्री अजित (चिह्न हाथी)

प्रथम तीर्थंकर, मानव सम्यक्ता के आद्य प्रवर्तक भगवान् श्री ऋषभदेव के सुदीर्घकाल पश्चात् इस घरातल पर द्वितीय तीर्थंकर के रूप में भगवान् श्री अजित का अवतरण हुआ ।

पूर्वभाव :

महाराज विमलवाहन के जीवन में उन्होंने बड़ी साधना और जिन प्रवचन की भक्ति की थी । संसार में रहते हुए भी इनका जीवन भोगों से अलिप्त था । विशाल राज्य और भव्य भोगों को पाकर भी उस ओर इनकी प्रीति नहीं हुई । लोग इनको युद्धवीर, दानवीर और दयावीर कहा करते थे ।

इनका मन निरन्तर इस बात के लिये चिंतित रहता था कि — “मनुष्य जन्म पाकर हमने क्या किया ? बचपन से लेकर आज तक न जाने कितनों को सताया, कितनों को डराया और कितनों को निराश किया, जिसकी कोई सीमा नहीं । तन, धन और सम्मान के लिये हजारों कष्ट सहते रहे । पर अपने आपको ऊंचा उठाने का कभी विचार नहीं किया । क्या जीवन की सफलता यही है ?”

राजा के इस प्रकार के चिंतन को तब और बल मिला जब अरिदम आचार्य के नगर के उद्यान में आने की शुभ सूचना वन पालक ने उनको दी । बड़े उत्साह और प्रेम के साथ राजा आचार्य को वन्दन करने गया और आचार्य के त्यागपूर्ण जीवन के दर्शन कर परम प्रसन्न हुआ । उसके अन्तर्मान की सारी वासनाएँ शांत हो गयी । आचार्य के त्याग और वैराग्यपूर्ण उपदेश को सुनकर राजा विरक्त हुआ और पुत्र को राज्य सौंपकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली ।

वह साधु बन गये । पांच समिति, तीत गुप्ति की साधना करते हुए उन्होंने विविध प्रकार के तप, अनुष्ठान आदि किए और एकावली, रत्नावली, लघुसिंह

५० : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

आपका विवाह हुआ। लेकिन आप अल्पित भाव से दत्त सांसारिक व्यवहार को चलाते रहे।

मोक्ष-साधन की इच्छा प्रकट करते हुए एक दिन राजा जितशत्रु ने अजित से राज्य ग्रहण करने के लिये कहा। आपने मुझाय दिया कि राज्य का भार चाचा सुमित्र को सौंप दिया जावे। किन्तु उन्होंने भी इसे स्वीकार नहीं किया। तब आपको ही राज्य भार का संचालन अपने हाथों में लेना पड़ा। आपके शासनकाल में प्रजा सुख-समृद्धि और शांति का अनुभव करने लगी। इस अवधि में महाराज अजित अपने कर्त्तव्य के प्रति गतिशील बने रहे थे। अधिकांश पक्ष के प्रति वे पूर्णरूप से उदासीन थे। अंततः आपने राज्य का भार सुमित्र के पुत्र सगर को सौंपकर दीक्षित होने का संकल्प कर लिया। सगर आगे चलकर दूसरा चक्रवर्ती बना।

दीक्षा एवं पारणा :

श्री अजित के विरक्त भाव को जानकर लोकान्तिक देव आये और उन्होंने प्रभु से धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तन की प्रार्थना की। प्रभु ने भी एक वर्ष तक दान देकर माघ शुक्ला नवमी को दीक्षा की तैयारी की। हजारों स्त्री-पुरुषों के बीच जब आप सहस्राम्रवन में पालकी से नीचे उतरे तब जयनाट से गगन गण्डत गूंज उठा। २

भगवान् श्री अजित ने पंचमुष्टिक लोचकर समस्त सावद्य कर्मों का त्याग किया। दीक्षा की महत्ता से प्रभावित होकर आपके साथ एक हजार अन्य राजा और राजकुमारों ने भी दीक्षा ग्रहण की। उस समय आप वेले ३ की तपस्या में थे। अयोध्या के राजा ब्रह्मदत्त के यहां भगवान् श्री अजित का प्रथम पारणा क्षीरान्न से सम्पन्न हुआ था।

केवल ज्ञान :

बारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में विचरने के बाद भगवान् पुनः विनी-

१. जैन धर्म का मो. इ., प्र. भा., पृ० ६६

२. जैन धर्म का मो. इ., प्र. भा. पृ. ६६

३. तिलोप पण्णति भा. ६४४-६६७ में अष्टम भवत का उल्लेख है।

नामकरण :

आपके जन्म से सम्पूर्ण राज्य में अद्भुत परिमाण होने लगे। समृद्धि में सम्पूर्ण वृद्धि होने लगी। राज्य भी बड़ी बड़ी गंगा अधिक उत्पन्न होने लगा। इसके अतिरिक्त महाराज जिपारि के साथ अगम्य प्रतीत होने वाले कार्य भी सम्भव हो गये। अतः माता-पिता ने निम्नोक्त अपने पुत्र का नाम सम्भव रखा । 2

गृहस्थावस्था एवं दीक्षा :

बुढ़ा होने पर सम्भव का निताह मुन्दर राजकुमारियों से किया गया। जन्म से पन्द्रह लाख पूर्व व्यतीत होने पर पिता ने आपको राज्य-भार सौंप दिया। चार पूर्वांग अधिक शवालीय लाख पूर्व तक आप राज्य करते रहे। तदनन्तर मार्ग-शीर्ष पूर्णिमा के दिन मृगशीर्ष नक्षत्र में जब चन्द्र का योग था, तब आपने तीर्थंकर की परम्परा के अनुसार वार्षिक दान देकर सर्वार्थ नामक शीविका में आरुढ़ होकर सहस्राम्रवन में पष्ठ तपस्या के साथ दिन के पिछले प्रहर में एक हजार राजाओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की । 3

आपके परम उच्च त्याग से देव, दानव एवं मानव सभी बहुत प्रभावित थे, क्योंकि आप चक्षु, श्रोत्र आदि पांच इन्द्रियों पर और क्रोध, मान, माया एवं लोभ रूप चार कपायों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर मुक्ति हुए। दीक्षित होते ही आपको मनः पर्यव शान उत्पन्न हुआ और जन जन के मन पर आपकी दीक्षा का बड़ा प्रभाव रहा । 4

विहार और पारणा :

जिस समय आपने दीक्षा ग्रहण की उस समय आपको निर्जल पष्ठ भक्त का तप था। दीक्षा के दूसरे दिन प्रभु सावस्वी नगरी में पधारे और सुरेन्द्र

१. जैनधर्म का मो० इति०, प्र० भा०, पृ६६

२. ख० महा० पु० ख०, पृ० ७२

३. आगमों में तीर्थ० चरित, पृ० १७६

४. जैनधर्म का मो० इति०, प्र० भा० पृ० ७०

दीक्षा एवं पारणा :

प्रजात्रयो को कर्मण्य-प्राप्तन और मोक्षिणो को शिक्षा देते हुए साठे दशम नाम पूर्ण वर्षों तक उत्तम प्रकार से राज्य का संचालन कर प्रभु ने दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की । लोकान्तिक देवों की प्रार्थना और वर्षादान देने के पश्चात् साय शुक्ला द्वादशी को अभिनि-अभिजित नक्षत्र के योग में एक हजार राजाओं के साथ भगवान् ने सम्पूर्ण पापकर्मों का त्याग किया और ने पंच मुष्टिक नोन कर गिद्ध की मांसी में संसम स्वीकार कर संसार में निवृत्त हो मुनि बन गये । उम समय आपको देने की तपस्या थी ।

दीक्षा के पश्चात् आप साकेतपुर पधारे और वहाँ के महाराज इन्द्रवज्र के यहाँ प्रथम पारणा किया । उम समय देवों ने पंच दिव्य प्रकट कर 'ग्रहोदान-अहोदान' का दिव्य घोष किया । 13

केवलज्ञान :

दीक्षा ग्रहण करते ही आपने मोनश्चत धारणा कर लिया जिसका निर्वह करते हुए उन्होंने अठारह वर्ष की दीर्घ अवधि तक कठोर तप किया - उग्र तप,

१. च० सह० पृ० च०, पृ ७५.

२. आगमों में तीर्थंकर चरित, पृ. १७६.

३. जैनधर्म का मो० इति०, प्र० भा० पृ० ७३

अन्तर्गत लागू पूर्व और नाराज पूर्वांग वषों तक जागृत रूप संगीत । पूर्व संस्कारों के प्रमाणस्वरूप उपर्युक्त गमय पर राजा के मन में निरन्तर का भाव प्रगाढ़ होने लगा और ने भोग कर्मों की समाप्ति कर मंगल संगीकार करने को तैयार हुए । ११

दीक्षा एवं पारणा :

संघम का संकल्प दृढ़ होता गया और राजा मुमतिनाथ ने श्रद्धापूर्वक वर्षा-दान किया । वे स्वयं प्रबुद्ध हुए और वैशाखा शुक्ला नवमी को मघा नक्षत्र के योग में राजा मुमति पंच मुष्टि लोचनकर सर्वथा विरागोन्मुख हो गये, मुनि बन गये । आपके साथ एक हजार अन्य राजा भी दीक्षित हुए । दीक्षा ग्रहण करने के इस पवित्र अवसर पर आप पण्डित दो दिन के निजल तप में थे । अपने प्रथम पारणा विजयपुर के राजा पद्म के यहां किया । १२

केवल ज्ञान व देशना :

बीस वर्षों तक विविध प्रकार की तपस्या करते हुए भगवान् छद्मस्य श्रवस्था में विचरे । धर्म-ध्यान और शुक्लध्यान से बड़ी कर्म निर्जरा की । फिर सहस्रश्रावण में पधारकर ध्यानावस्थित हो गये । शुक्ल ध्यान की प्रकंपता से चार घातिक कर्मों के ईंधन को जलाकर चैत्र शुक्ला एकादशी के दिन मघा नक्षत्र में केवलज्ञान और केवलदर्शन की उपलब्धि की ।

केवलज्ञान की प्राप्ति कर भगवान् ने देव, दानव और मानवों की विशाल सभा में मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया और चतुर्विध संघ की स्थापना कर आप भाव तीर्थकर कहलाये । १३

धर्म परिवार :

आपका धर्म परिवार निम्नानुसार था :

गणधर	—	१००
केवली	—	१३०००

१. चौबीस तीर्थकर : एक पर्य०, पृ० ३०

२. वही, पृ० ३०-३१, जैन धर्म का मो० इति०, प्र० भा० पृ० ७७

३. जैन धर्म का मो० इति०, प्र० भा० पृ० ७७

७. भगवान् श्री पद्मप्रभ (चिह्न-पद्म)

भगवान् श्री पद्मप्रभ छठे तीर्थंकर हुए ।

पूर्वभव :

प्राचीनकाल में सुसीमा नगरी नामक एक राज्य था । वहाँ के शासक महाराज अपराजित थे । धर्माचरण की दृढ़ता के लिये राजा की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी । परमन्यायशीलता के साथ पुत्रवत् प्रजापालन किया करते थे । उच्च मानवीय गुणों को ही वे वास्तविक सम्पत्ति मानते थे और वे इस रूप में परम् धनाढ्य थे । वे देहधारी साक्षात् धर्म से प्रतीत होते थे । सांसारिक वैभव व भौतिक सुख-सुविधाओं को वे अस्थिर मानते थे । इसका निश्चय भी उन्हें हो गया था कि मेरे साथ भी इसका संग सदा-सदा का नहीं है । इस तथ्य को हृदयंगम कर उन्होंने भावी कष्टों की कल्पना को ही निर्मूल कर देने की योजना पर विचार प्रारम्भ किया । उन्होंने दृढ़तापूर्वक यह निश्चय कर लिया कि मैं ही आत्मबल की वृद्धि कर लूँ । पूर्व इसके कि ये बाल्य-मुद्यो-पकरण मुझे अकेला छोड़कर चले जाएँ, मैं ही स्वेच्छा से इन सब का त्याग कर दूँ । यह संकल्प उत्तरोत्तर प्रबल होता ही जा रहा था कि उन्हें विरक्ति की अति शक्त प्रेरणा अन्य दिशा से और मिल गई । उन्हें मुनि पिहिताश्रय के दर्शन करने और उनके उपदेशामृत का पान करने का सुयोग मिला । राजा को मुनि का चरणाश्रय प्राप्त हो गया । महाराज अपराजित ने मुनि के आशीर्वाद के साथ संयम स्वीकार कर श्रपना साधक जीवन प्रारम्भ किया । उन्होंने अहंत्वं भक्ति आदि अनेक आराधनाएँ की और तीर्थंकर नाम कर्म का उपा-र्जन कर आयु समाप्ति पर, ३१ सागर की परम स्थिति युक्त ग्रैवेयक देव बनने का मौभाग्य प्राप्त किया । १

१. चौथीस तीर्थंकर : एक पयं०, पृ० ३२

भा. वि. भा. वि. भा. वि. भा. वि. भा. वि.

धर्म-परिवार :

गणधर	---	१०७
केवली	---	१२०००
मनः पर्यवशानी	---	१०२००
अवधिशानो	---	१००००
वैक्रिय लब्धिधारी	---	१६५००
वादी	---	६६००
साधु	---	३३००००
साध्वी	---	४२००००
श्रावक	---	२७६०००
श्राविका	---	५०५०००

१. चौथीस तीर्थंकर : एक पर्यं०, पृ० ३४

२. जैन धर्म का मौ० इति० प्र० भा०, पृ० ८०

८. भगवान् श्री सुपाश्व (निहत्त-स्वस्तिक)

आप सातवें तीर्थंकर हुए ।

पूर्वभव :

क्षेमपुरी नगरी के योग्य शासक थे श्री नन्दीपेण । उस धर्मात्मा राजा को संसार से वैराग्य हो गया और उसने अरिदमन, नामक आचार्य के समीप प्रयज्या स्वीकार की । संयम एवं तप की उत्तम भावना में रमण करते हुए नन्दीपेण मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपाजन किया । आयुष्य पूर्ण कर नन्दीपेण छठे त्रैवेयक में देव हुए । उनका आयुष्य अट्ठाइस सागरोपम था । ११

जन्म एवं माता-पिता :

त्रैवेयक से निकलकर नन्दीपेण का जीव भाद्रपद कृष्ण अष्टमी के दिन विशाखा नक्षत्र में वाराणसी नगरी के महाराज प्रतिष्ठसेन की महारानी पृथ्वी की कुक्षि में गर्भ रूप से उत्पन्न हुआ । उसी रात्रि को महारानी पृथ्वी ने महापुरुषों के जन्म सूचक चौदह मंगलकारी शुभ-स्वप्न देखे ।

विधि पूर्वक गर्भकाल पूर्णकर माता ने ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी के शुभदिन विशाखा नक्षत्र में पुत्ररत्न को जन्म दिया ।

नामकरण :

गर्भकाल में माता पृथ्वी के पार्श्व शोभित रहे । इसलिये महाराज प्रतिष्ठसेन ने इसी बात को विचार कर बालक का नाम सुपाश्व रखा । १२

१. तीर्थंकर चरित्र, भा० १, पृ. १८५

२. च० महा० पु० च०, पृ० ८६

पाराशरनाथ :

भगवान् श्री गुरुदेव केवलनाथ शशि के चरणों में प्रणामनाम बिना
करके मध्य जीवों को प्रविष्ट हो रहे । वे श्रीगुरुदेव की ओर जो मांग कर एक
मात्र पूर्व तक विचरते रहे ।

आमुष्य काल निकट आने पर गुरुदेव शशि पर परमात्मा पर पाँच गो मुनिगो
के साथ एक मास के अनशन से फलानुन कृष्णमासमा की भूमि नक्षत्र में गिर
गति को प्राप्त हुए । प्रभु का कुल आमुष्य बीग लाभ पूर्व का था । २

ॐ

१. आगमों में तीर्थकर चरित, पृ० १८७

२. तीर्थकर चरित, भा० १, पृ० १८७

पूरा किया था और नरनाथ जिन्हीं की शक्ति भी चंद्रमा के समान शुभ और दीप्तिमान थी। अतः नालक का नाम चन्द्रप्रभ रखा गया। ११

गृहस्थावस्था:

युवा होने पर राजा महासेन ने उत्तम राज्य कन्याओं में प्रभु का पाणिग्रहण करवाया। ढाई लाख पूर्वं तक गुनराज पद पर रहकर फिर आप राज्य-पद पर अभिषिक्त किये गये और छः लाख पूर्वं से कुछ अधिक समय तक राज्य का पालन करते हुए प्रभु नीतिधर्म का प्रचार करते रहे। इनके राज्यकाल में प्रजा सर्वभांति सुख-सम्पन्न थी और कर्तव्य-मार्ग का पालन करती रही। १२

दीक्षा एवं पारणा :

उनके जीवन में वह पल शीघ्र ही आगया जब भोग कर्मों का क्षय हुआ। राजा चन्द्रप्रभ ने वैराग्य धारण कर दीक्षा ग्रहण कर लेने का संकल्प व्यक्त किया। लोकान्तिक देवों की प्रार्थना पर वर्षादान के पश्चात् उत्तराधिकारी को शासन-सूत्र सौंपकर अनुराधा नक्षत्र के श्रेष्ठ योग में प्रभु चन्द्रप्रभस्वामी ने पीप कृष्णा त्रयोदशी को दीक्षा ग्रहण की। आगामी दिवस को पद्मगण्ड नरेश सोमदत्त के यहां पारणा हुआ।

केवल ज्ञान एवं देशना :

भगवान् श्री चन्द्रप्रभ ने तीन महीने तक छद्मकाल में विहार किया और पुनः चन्द्रपुरी नगरी में सहस्राश्रयन में पधारे। वहां पुन्नाग वृक्ष के नीचे ध्यान में लीन हो गये। फाल्गुन कृष्णा सप्तमी के दिन अनुराधा नक्षत्र में द्युत की तपस्या में ध्यान की परमोच्च अवस्था में भगवान् ने केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया। १३ भगवान् ने समवसरण के मध्य विराजकर देशना प्रदान की और चतुर्विध संघ की स्थापना कर भाव-तीर्थंकर कहलाये। कुछ कम एक लाख पूर्वं तक केवली पर्याय में रहकर प्रभु ने लाखों जीवों का कल्याण किया। १४.

१. त्रिपिट्टि., ३।६।४६

२. जैन धर्म का मो० ६०, प्र० भा०, पृ० ८६-८७

३. धागमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ० १८९

४. जैन धर्म का मो० इति०, प्र० भा० पृ० ८६

१०. भगवान् श्री सुविधि (चिह्न-मकर)

भगवान् श्री चन्द्रप्रभ के उपरांत भगवान् श्री सुविधि नवें तीर्थंकर हुए ।

पूर्वभव :

पुष्कराब्द द्वीप के पूर्व महाविदेह में 'पुष्कलावती' नामक विजय में 'पुण्डरीकिणी' नामक नगरी थी । वहां महापद्म नामक राजा का राज्य था । उसने जगन्नाथ नामक आचार्य के पास संयमव्रत अंगीकार किया । दीक्षोपरांत पद्म मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया । अन्त समय में अनशनपूर्वक देहोत्सर्ग कर वैजयन्त नामक अनुत्तर विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए । वहां उन्होंने तृतीया सागरोपम की आयु प्राप्त की ।

जन्म एवं माता-पिता :

काकन्दो नगरी के महाराज सुग्रीव इनके पिता और रामादेवी इनकी माता थी ।

वैजयन्त विमान से निकलकर महापद्म का जीव फाल्गुन कृष्ण नवमी को मूल नक्षत्र में माता रामादेवी की कुक्षि में गर्भ रूप से उत्पन्न हुआ । माता ने उसी रात्रि में चौदह मंगलकारी महाशुभ स्वप्न देखे । महाराज सुग्रीव से स्वप्नों का फल सुनकर वह आनंदित हो गई ।

गर्भकाल पूर्ण कर माता रामादेवी ने मृगशिर कृष्ण पंचमी को मध्यरात्रि के समय मूल नक्षत्र में सुखपूर्वक पुत्र रत्न को जन्म दिया । माता-पिता एवं नरेन्द्र-देवेन्द्रों ने जन्मोत्सव हर्षोल्लासपूर्वक मनाया ।

१. आगमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ० १६१

केवलज्ञान :

चार माह तक प्रभु विविध कष्टों को सहन करते हुए ग्रामानुग्राम विचरते रहे । फिर सहस्राम्रउद्यान में आकर प्रभु ने क्षपक श्रेणी पर आरोहण किया और शुक्लध्यान से धाति कर्मों का क्षय कर मालूर वृक्ष के नीचे कार्तिक शुक्ला तृतीया को मूल नक्षत्र में केवल ज्ञान की प्राप्ति की ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद देव-मानवों की सभा में प्रभु ने धर्मोपदेश दिया और चतुर्विध संघ की स्थापना कर भाव-तीर्थंकर कहलाये ।^१

धर्म-परिवार :

गणधर	—	८८
केवली	—	७५००
मनः पर्यवजानी	—	७५००
अवधिजानी	—	८४००
चौदह पूर्वधारी	—	१५००
वैक्रिय लब्धिधारी	—	१३०००
वादी	—	६०००
साधु	—	२०००००
माध्वी	—	१२००००
श्रावक	—	२२६०००
श्राविका	—	४७२०००

परिनिर्वाण :

आयुष्य काल निकट आने पर प्रभु सम्मैदुर्गिखर पर्वत पर एक हजार मुनियों के साथ पधारे । एक मास का अतनगन हुआ और कार्तिक कृष्णा नवमी को मूल नक्षत्र में अष्टादश पूर्वांग और चार मास कम एक लाख पूर्व तक तीर्थंकर पद भोग कर मोक्ष पधारे । प्रभु का कुल आयुष्य दो लाख पूर्व का था ।^२

१. जैन धर्म का सौ० इति०, प्र० भा०, पृ० ८६

२. श्रीरंकर चरित्र - प्रथम भाग, पृ० १९७

११. भगवान् श्री शीतल (चिह्न - श्रीवत्स)

भगवान् श्री मुनिगि के बाद भगवान् श्री शीतल दमयें तीर्थंकर हुए ।

पूर्वमव :

प्राचीनकाल में मुभीमा नगरी नामक राज्य था, जहाँ के नृपति महाराज नरसिंहदेव थे। राजा ने मुभीपंतकाल तक प्रजापालन का कार्य न्यायपूर्ण किया। राज्य में उनके मंत्र में विरक्ति का भाव उत्पन्न हुआ और आनायों विस्तार के कारण में उन्होंने संघर्ष स्वीकार कर लिया। अनेकानेक उत्कृष्ट कौटिक के तप और योगियों के द्वारा उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का उपाजन किया। देहावसान के उपरान्त उनके जीव को प्राणत स्वर्ग में श्रीम गायत्री की स्थिति पाये इस से स्वर्ग में स्थित किया। ॥१॥

• २३१ •

[illegible][illegible]

1000 1000 1000 1000 1000 1000 1000 1000 1000 1000

THE UNIVERSITY OF CHICAGO

केवलज्ञान :

। तीन महीने तक छद्मस्थकाल में विचरकर भगवान् श्री शीतल भद्रिदलपुर नगर के सहस्राम्रच्छान में पधारे । वहाँ पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान में लीन हो गये । पीप कृष्णा चतुर्दशी के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्र के योग में धनघाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया । देवताओं ने प्रभु का केवलज्ञान उत्सव मनाया । भगवान् ने समवसरण के बीच एक हजार अस्सी धनुष ऊँचे चैत्य वृक्ष के नीचे रत्नसिंहासन पर विराजकर उपदेश दिया । भगवान् का उपदेश गुणकर आनंद आदि ८१ व्यक्तियों ने प्रयज्या ग्रहण कर गणधर पद प्राप्त किया ।^१ भगवान् ने चतुर्विध संघ की स्थापना की और माव-तीर्थकर कहलाये ।

धर्म-परिवार :

गण एवं गणधर	—	८१
केवली	—	७०००
मनः पर्यवजानी	—	७५००
अवधि ज्ञानी	—	७२००
चौदह पूर्वधारी	—	१४००
वैक्रिय लब्धिधारी	—	१२०००
वादी	—	५८००
माधु	—	१०००००
माध्वी	—	१००००६
श्रावक	—	२८६०००
श्राविका	—	४५८०००

परिनिर्वाण :

मोक्षकाल निकट आने पर प्रभु एक हजार मुनियों के साथ सम्मेद्विगार पर्यंत पर पधारे और एक माग का संयाग किया । येनास कृष्णा द्वितीया को पूर्वाषाढा नक्षत्र में प्रभु परमगिद्धि को प्राप्त हुए । प्रभु का कुल आयुष्य एक लाख वर्ष का था ।^२ कुछ कम पक्षीय हजार वर्ष तक प्रभु ने समय का पावन किया ।^३

१. अजयपुर में तीर्थकर चरित्र पृ० १६४

२. तीर्थकर चरित्र, प्र. भा., पृ. २०१

३. जैन धर्म का मो. इ. प्र. भा., पृ. ६३

१२. भगवान् श्री श्रेयांस (चिह्न-गेंडा)

तीर्थंकर परम्परा में भगवान् श्री श्रेयांस का ग्यारहवां स्थान है ।

पूर्वभूत :

पुष्कराब्द द्वीप के पूर्व विदेह के कच्छविजय में क्षेमा नामक नगरी थी । वहाँ के राजा का नाम नलिनी गुल्म था । वह अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति वाला व्यक्ति था । एक बार क्षेमा नगरी में वज्रदत्त नामक आचार्य का आगमन हुआ । महाराजा नलिनी गुल्म आचार्य का आगमन सुनकर उनके दर्शन के लिये गये । आचार्य का उपदेश सुनकर उन्होंने संयमव्रत अंगीकार कर लिया । वे मुनि बन गये । प्रव्रज्या ग्रहण करके उन्होंने कठोर तप किया और तीर्थंकर नामकर्म का उपाजन किया । अन्त में बहुत समय तक चारित्र्य का पालन करते हुए आयु पूर्ण की ओर मरकर महाशुक्ल नामक देवलोक में महाद्विक देव हुए ।^१

जन्म एवं माता-पिता :

ज्येष्ठ कृष्णा पक्षी के दिन श्रावण नक्षत्र में नलिनीगुल्म का जीव स्वर्ग से चलेकर भारतवर्ष की भूपणस्वरूपा नगरी सिद्धपुरी के अधिनायक महाराज विष्णु की पत्नी सद्गुणधारिणी महारानी विष्णुदेवी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ । माता ने उमरी रात में चौदह महाशुभ स्वप्न देखे । गर्भकाल पूर्ण कर माता ने फाल्गुन कृष्णा द्वादशी को मुखपूर्वक पुत्ररत्न को जन्म दिया । आपके जन्म-काल के समय सर्वत्र सुख, शान्ति और हर्षोल्लास का वातावरण फैल गया ।^२

नामकरण :

बालक के जन्म से न केवल राजपरिवार वरन् समस्त राज्य का कल्याण

१. आणसों में तीर्थंकर चरित्र, पृ. १६५.

२. जैनधर्म का भौ. इ., प्र. भा. पृ. ६४

धर्मप्रधान :

केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् प्रभु उग्र समय की राजनीति के केंद्र पोतनपुर पधारे। पोतनपुर त्रिपृष्ठ वागुदेव की राजधानी थी। उग्रान के रक्षक ने आकर वागुदेव को शुभ संवाद दिया — "महाराज तीर्थंकर श्री श्रेयांस अपने नगर के उग्रान में पधारे हैं।" अचानक यह संवाद सुनकर वागुदेव हर्षविभोर हो गये। इस गुणी में उन्होंने इतना पुरस्कार दिया कि वह रक्षक धन-सम्पन्न हो गया। वागुदेव और उनके बड़े भाई श्रवत वलदेव प्रभु के दर्शन करने आये। प्रभु ने मानव के कर्तव्यों का विवेचन-विश्लेषण करते हुए हृदयस्पर्शी उपदेश दिया।

वागुदेव त्रिपृष्ठ इस कालचक्र के पहले वागुदेव थे। वे अत्यन्त पराक्रमी और कठोर शासक थे। उनकी भुजाओं में अद्भुत बल था। एक बार एक भयंकर क्रूर सिंह से निःशस्त्र होकर मुकाबला किया और सिंह के जबड़े पकड़कर यों चीर डाले जैसे पुराना कपड़ा चीर रहे हों। उस समय के क्रूर और अत्याचारी शासक अश्वघ्रीव (प्रति वागुदेव) के आतंक से प्रजा को मुक्त कर वे तीन खण्ड के एक छत्र सम्राट वागुदेव बने थे। आज्ञा के उल्लंघन के अपराध में उन्होंने शय्यापालक के कान में खीलता हुआ सीसा उंटेलवा दिया था। जिससे उनको सातमी नरक में जाने का आयुष्य बंधा।

जब वागुदेव त्रिपृष्ठ ने प्रभु श्री श्रेयांस की देशना सुनी तो सहसा प्रकाश-सा उनके हृदय में छा गया। राजनीति के वे घुरंघर थे किन्तु आत्मविद्या में आज भी बालक थे। प्रभु का उपदेश सुनकर दया, करुणा, समता और भक्ति के भाव उनके हृदय में जाग्रत हो उठे। संस्कारों के इस परिवर्तन से वागुदेव

१. चौबीस तीर्थंकर : एक पयं., पृ. ५३

१३. भगवान् श्री वासुपूज्य (चिह्न-महिष)

बारहवें तीर्थंकर भगवान् श्री वासुपूज्य हुए ।

पूर्वभव :

पुष्कराक्ष द्वीप के पूर्व, विदेह क्षेत्र के मंगलावती विजय में रत्नसंचया नामक नगरी थी । वहां के शासक का नाम पद्मोत्तर था । वज्रनाभ मुनि के समीप उसने चारित्र्य ग्रहण किया । संयम और तप की उत्कृष्ट भावों से आराधना करते हुए उन्होंने तीर्थंकर नाम कम का उपाजन किया । अन्तिम समय में समाधिपूर्वक देह-त्याग कर वे प्राणतकल्य में महद्दिक देव बने । १

जन्म एवं माता-पिता :

प्राणत स्वर्ग से निकल कर पद्मोत्तर का जीव तीर्थंकर रूप से उत्पन्न हुआ । भारत की प्रसिद्ध चम्पानगरी के प्रतापी राजा वसुपूज्य इनके पिता और महारानी जयादेवी माता थी । ज्येष्ठ शुक्ला नवमी को शतभिषा नक्षत्र में पद्मोत्तर का जीव स्वर्ग से निकलकर माता जयादेवी की कुक्षि में गर्भ-रूप से उत्पन्न हुआ । उसी रात्रि में माता जयादेवी ने शीदह शुभस्वप्न देते जो महान् पुण्यात्मा के जन्म-सूचक थे । उचित आहार विहार से माता ने गर्भ-काल पूर्ण किया और फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी के दिन शतभिषा नक्षत्र के योग में सुप्तपूर्वक पुत्ररत्न को जन्म दिया । २

नामकरण :

महाराजा वसुपूज्य के पुत्र होने के कारण आपका नाम वासुपूज्य रखा गया ।

१. आगमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ. ११८

२. जैन धर्म का मो० ३०, प्र० भा०, पृ० १६

केवली होकर भगवान् ने देव-असुर-मानवों की विशाल सभा में धर्म-वेदाना दी जिसमें दशविध धर्म का स्वरूप समझाकर चतुर्विध संघ की स्थापना की और भाव तीर्थकर कहलाये । १

धर्म-प्रभाव :

विहार करते हुए जब भगवान् द्वारिका के निकट पधारे तो राजपुरुष ने वासुदेव द्विपृष्ठ को भगवान् के पधारने की शुभ-सूचना दी । भगवान् श्री वासुपूज्य के पधारने की शुभ-सूचना की वधाई सुनाने के उपलक्ष में वासुदेव ने उसको साढ़े चारह करोड़ मृदाओं का प्रतिदान दिया । त्रिपृष्ठ के बाद ये इस समय के दूसरे वासुदेव होते हैं । भगवान् श्री वासुपूज्य का धर्म शासन भी सामान्य लोकजीवन से लेकर राजघराने तक व्यापक हो चला था । २

धर्म-परिवार :

गण एवं गणघर	—	६६
केवली	—	६०००
मनः पर्यवशानी	—	६१००
मनगिज्ञानी	—	५४००
चोख् पूयभासी	—	१२००
वैश्रव्य पविधधारी	—	१००००
वार्दी	—	४७००
माधु	—	७२०००
माध्वी	—	१०००००
आपक	—	२१५०००
आर्षिता	—	४३६०००

परिनिर्वाण :

परिनिर्वाण निकट जानकर प्रभु ३०० मुनियों के साथ चम्पानगरी पहुँचा

१. जैन धर्म का दर्शन, प्र. भा., पृ. १००

२. जैन धर्म का दर्शन, प्र. भा., पृ. १०१

केवलज्ञान :

दो वर्ष तक छद्मस्थ काल में विचर कर भगवान् पुनः कपिलपुर के सहस्राम्रउद्यान में पधारे । वहाँ जम्बू वृक्ष के नीचे पष्ठ तप के साथ कायोत्सर्ग मुद्रा में लीन हो गये । उस समय ध्यान की परमोच्च अवस्था में पीप शुक्ला पण्ठी के दिन उत्तराभाद्र पद नक्षत्र में केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया । देवों ने केवलज्ञान महोत्सव मनाया । तदनंतर भगवान् ने देवनिर्मित समचसरण में विराजकर धर्मोपदेश दिया । और चतुर्विध संघ की स्थापना कर भाव तीर्थ-कर कहलाये ।

धर्म-परिवार :

आपके संघ में मन्दर आदि छप्पन गणधरादि सहित निम्नलिखित परिवार था :-

गण एवं गणधर	—	५६
केवली	—	५५००
मनः पर्यवज्ञानी	—	५५००
अवधिज्ञानी	—	४८००
चौदहपूर्वधारी	—	११००
वैक्रिय लब्धिधारी	—	६०००
वादी	—	३२००
साधु	—	६८०००
साध्वी	—	१००८००
श्रावक	—	२०८०००
श्राविका	—	४२४०००

परिनिर्वाण :

केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद दो कम पन्द्रह लाख वर्ष तक प्रभु पृथ्वी पर विहार करने हुए विचरते रहे । फिर निर्वाणकाल निकट आने पर सम्मोदशिखर

१५. भगवान् श्री अनन्त (विष्णु-पार)

चौत्थों तीर्थंकर भगवान् श्री अनन्त हुए ।

पूर्वभव :

मातङ्गी गण्डकीन के प्राग्निदेह में ऐशान्त नामक निजग में अग्निदा नामक नगरी थी । नगरी भन-भान से मग्न थी । वहां के राजा पद्मरथ बड़े चौर और धार्मिक मनोवृत्ति वाले थे । एक बार नगर में "विततरथ" नामक शासन प्रभावक आचार्य पधारे । आचार्य के उपदेश से उसका मन वैराग्य-भाव से भर उठा । घर आकर उसने अपने पुत्र को राज्यभार सौंपा और पुनः आचार्य की सेवा में उपस्थित हो दीक्षित हो गया । दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त उन्होंने आचार्य के समीप श्रुति का अध्ययन किया । आगमों का ज्ञान प्राप्त कर पद्मरथ मुनि कठोर तप करने लगे । तप संयम की उत्कृष्ट साधना करते हुए उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का उपाजंन किया । तप से अपने शरीर को क्षीण किया और आत्मा को उज्ज्वल बनाया । अपना आयुष्य पूर्ण कर समाधि-पूर्वक देह त्याग कर वे प्राणत देवलोक में उत्पन्न हुए और महद्विक देव बने । १

जन्म एवं माता-पिता :

श्रावण कृष्ण सप्तमी को रेवती नक्षत्र में पद्मरथ का जीव स्वर्ग से निकलकर अयोध्या नगरी के महाराज सिंहसेन की रानी सुयशा की कुक्षि में गर्भरूप से उत्पन्न हुआ । माता सुयशा ने उस रात को चौदह महाशुभ स्वप्न देखे । गर्भकाल पूर्णकर माता सुयशा ने वैशाख कृष्ण त्रयोदशी के दिन रेवती नक्षत्र के योग में सुखपूर्वक पुत्ररत्न को जन्म दिया । देव-दानव और मानवों ने जन्मोत्सव हर्षोल्लास के साथ मनाया । २

१. आगमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ. २०४

२. जैनधर्म का मो. द्व., प्र. भा., पृ. १०५

महामायाउत्तम में पगारे । तब उसीक तब के नीचे ग्यातागमिन हो गये ।
 येनाम कृष्ण चतुर्गुण के दिन येनी काल में भगवान् तभी का हाथ का
 केवलज्ञान और केवल दर्शनमात्र किया । देवों ने भगवान् का केवलज्ञान
 उत्तम मनाया । भगवान् ने देव निमित्त समस्तमय में विराजकर भर्मापदेश
 दिया । १ भर्म-देवता देकर आपने चतुर्गुण मय की स्थापना की और भान-
 तीर्थकर कहलाये ।

धर्म-परिवार :

आपका धर्म-परिवार निम्नानुसार था :-

गण एवं गणधर	—	५०
केवली	—	५०००
मनः पर्यवज्ञानी	—	५०००
अवधि ज्ञानी	—	४३००
चौदह पूर्वधारी	—	६००
वैक्रिय लब्धिधारी	—	८०००
वादी	—	३२००
साधु	—	६६०००
साध्वी	—	६२०००
श्रावक	—	२०६०००
श्राविका	—	४१४०००

परिनिर्वाण :

केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् सात लाख वर्ष व्यतीत हो जाने पर चैत्र
 शुक्ला पंचमी के दिन रेवती नक्षत्र में सम्मेदशिखर पर्वत पर एक मास का अन-
 शान ग्रहणकर सात मुनियों के साथ आपने मोक्ष प्राप्त किया । भगवान् श्री
 अनन्त ने कुमारवस्था में साढ़े सात लाख वर्ष, राज्यकाल में पन्द्रह लाख वर्ष
 एवं संयम पालन में सात लाख वर्ष व्यतीत किये । इस प्रकार भगवान् की कुल
 आयु तीस लाख वर्ष की थी । २

०

१. आगमों में तीर्थकर चरित्र, पृ० २०५

२. आगमों में तीर्थकर चरित्र, पृ० २०६

नामकरण :

नामकरण के दिन तपस्विना यशस्वर का पुत्र भित्तपर्व को महाराज भानु ने बताया कि जब नामक गर्भ में था तब महाराजी भूतना को गर्भ मापन के उत्तम दोषद उत्पन्न होते रहे तथा भानुना भी महीन गर्भ प्रधान ही लगी रही। इसलिये नामक का नाम गर्भ रखा जावे। तथा नामक का नाम गर्भ रखा गया।

गृहस्थावस्था :

जोड़ा करते हुए गुण-नैमन के साथ आपका ताल्यकाल व्यतीत हुआ और आप युवा हुए। योगनकाल तक आपका व्यक्तित्व अनेक गुणों ने सम्पन्न हो गया। माता-पिता का आदेश स्वीकार करते हुए आपने विवाह किया और सुखी विवाहित जीवन भी व्यतीत किया।

जब आपकी आयु छद्द साय वर्ष की हुई तो पिता महाराजा भानु ने उनका राज्याभिषेक कर दिया। शासनारुढ़ होकर महाराजा गर्भ ने न्यायपूर्वक और वात्सल्य भाव से प्रजा का पालन और रक्षण किया। पांच साय वर्ष तक इस प्रकार राज्य करने पर उनके भोग-कर्म समाप्त हो गये। ऐसी स्थिति में उनके मन में विरक्ति के भाव अंकुरित होने लगे। 12

दीक्षा एवं पारणा :

लोकान्तिका देवों के प्रार्थना करने पर वर्ष भर तक दान देकर नागदत्ता णिविका से प्रभु नगर के बाहर उद्यान में पहुँचे और एक हजार राजाओं के साथ घेले की तपस्या से माघ शुक्ला त्रयोदशी को पुण्य नक्षत्र में सम्पूर्ण पापों का परित्याग कर आपने दीक्षा ग्रहण की। सोमनसनगर में जाकर धर्मसिंह के यहाँ प्रभु ने परमान्न से प्रथम पारणा किया। देवों ने पंच-दिव्य वरसा कर दान की महिमा प्रकट की। 13

१. त्रिपट्टि०, ४।५।४६ और च० महा० चरि०, पृ० १३३, भाव० चूर्णि पूर्वभाग, पृ० ११

२. चौबीस तीर्थंकर : एक पत्र, पृ० ७१

३. जैन धर्म का मो. इ., प्र. सा. पृ. १०६

परिनिर्वाण :

अपना निर्वाणकाल समीप जानकर भगवान् सम्मेदशिखर पर पधारे। आठ सौ मुनियों के साथ आपने एक मास का अनशन ग्रहण किया। ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन पुण्य नक्षत्र के योग में भगवान् ने निर्वाण प्राप्त किया। भगवान् ने ढाई लाख वर्ष कुमारावस्था, पांच लाख वर्ष राजा के रूप में एवं ढाई लाख वर्ष व्रत पालन में व्यतीत किये। इस प्रकार भगवान् की कुल आयु दस लाख वर्ष की थी।

वज्रायुध की निस्वार्थवृत्ति से देव प्रसन्न हुआ और दिव्यअलंकार भेंट कर वज्रायुध के सम्यक्त्व की प्रशंसा करते हुए चला गया ।

किसी समय वज्रायुध के पूर्वभव के शत्रु एक देव ने उनको क्रीड़ा में देखकर ऊपर से पर्वत गिराया और उन्हें नागपाश में बांध लिया, परन्तु प्रबल पराक्रमी वज्रायुध ने वज्रशृङ्खला नाराच-संहनन के कारण एक ही मुष्टि-प्रहार से पर्वत के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और नागपाश को भी तोड़ फेंका ।

कालांतर में राजा क्षेमंकर ने वज्रायुध को राज्य देकर प्रव्रज्या ग्रहण की और केवलज्ञान प्राप्त कर भाव तीर्थंकर कहलाये । उधर भावी तीर्थंकर वज्रायुध ने आयुध शाला में चक्रवर्त्त के उत्पन्न होने पर छः खण्ड पृथ्वी को जीतकर सार्वभौम सम्राट का पद प्राप्त किया और सहस्रायुध को युवराज बनाया ।

एक बार जब वज्रायुध राजसभा में बैठे हुए थे कि 'वचाओ । वचाओ ।' की पुकार करता हुआ एक विद्याधर वहां आया और राजा के चरणों में गिर पड़ा ।

दरणागत जानकर वज्रायुध ने उसे आश्वस्त किया । कुछ समय बाद ही हाथ में शस्त्र लिये एक विद्याधर दम्पती का आगमन हुआ और अपने अपराधी की मांग की ।

महाराज वज्रायुध ने उनको पूर्वजन्म की बात सुनाकर उपशान्त किया और स्वयं भी पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की । वे संयम साधना के पदचार् पादोपगमन संथारा कर आयु का अंत होने पर प्रवेयक में देव हुए ।

प्रवेयक से निकलकर वज्रायुध का जीव पुण्डरीकिणी नगरी के राजा घनरथ के यहां महारानी प्रियमती की कुक्षि से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ । उसका नाम मेघरथ रखा गया ।

महाराज घनरथ की दूसरी रानी मनोरमा से हृदय का जन्म हुआ । युवा होने पर सुमदिगपुर के राजा की कन्या के साथ मेघरथ का विवाह हुआ । मेघरथ महाद पराक्रमी होकर भी बड़े दयालु और साहसी थे ।

१६. भगवान् श्री अर (विष्णु-नरनामं स्तविक)

भगवान् कुन्तुनाग के भगवान् अवतस्थित होने वाले अठारहवें तीर्थंकर हुए भगवान् श्री अर ।

पूर्वभव :

जम्बूद्वीप के पूर्वदिशे में गुप्तीमा नामक रमणीय नगरी थी । वहाँ के धनपति वीर नामक राजा थे । उन्होंने रावण नामक आचार्य के उपदेश को सुनकर दीक्षा ग्रहण करली । चारित्र्य ग्रहण कर तपः साधना के द्वारा तीर्थंकर नाम कर्म का उपाजन किया । अन्त में अगशनपूर्वक देह का त्याग कर नौवें गवैयक विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए । १

जन्म एवं माता-पिता :

गवैयक से निकलकर धनपति का जीव हस्तिनापुर के महाराज सुदर्शन की रानी महादेवी की कुक्षि में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को गर्भरूप में उत्पन्न हुआ और उसी रात को महारानी ने चौदह शुभ स्वप्नों को देखकर परम आनन्द प्राप्त किया ।

गर्भकाल पूर्ण होने पर मृगशिर शुक्ला दशमी को रेवती नक्षत्र में माता ने सुख-पूर्वक कनक-वर्णीय पुत्ररत्न को जन्म दिया । देव और देवेन्द्रों ने जन्म महोत्सव मनाया । महाराज सुदर्शन ने भी नगर में आमोद-प्रमोद के साथ प्रभु का जन्म महोत्सव मनाया । २

१. आगमों में तीर्थंकर चरित, पृ. २३७

२. जैन धर्म का मो. इति. प्र. भा., पृ. १२२

राज्य वैभवं का त्याग कर संन्यास ग्रहण करने की अभिलाषा प्राप्त की। लोकान्तिक देवों ने आकर नियमानुसार प्रभु से प्रायश्चा की और अरिन्द कुमार को राज्य सौंपकर आप वर्षादान में प्रवृत्त हुए तथा मानकों को दत्तानुसार दान देकर एक हजार राजाओं के साथ बड़े समारोह के साथ दीक्षाएं निकल पड़े।

सहस्राम्रवन् में आकर मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को देखती नक्षत्र में छट्ठ भक्त बेलों की तपस्या से सम्पूर्ण पापों का परित्याग कर प्रभु ने विधिवत् दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करते ही आपको मनःपर्यवसान उत्पन्न हुआ। राजपुर नगर में अपराजित राजा के यहाँ प्रभु ने परमान्न से पारणा ग्रहण किया। ११

केवलज्ञान

तीन वर्षों तक छद्मस्थावस्था में रहने के बाद भगवान् हस्तिनापुर के सहस्राम्रवन् में पधारे। वहाँ कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन शुक्ल ध्यान की उच्च अवस्था में आश्रवृक्ष के नीचे प्रभु को केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति हुई। इन्द्रादि देवों ने भगवान् का केवलज्ञान उत्सव मनाया। समवसरण की रचना हुई और उसमें विराजकर प्रभु ने धर्मोपदेष्टा देकर चतुर्विध संघ की स्थापना की। १२ चतुर्विध संघ की स्थापना कर प्रभु भाव-तीर्थंकर एवं भाव-अरिहंत कहलाये। १२

धर्म-परिवार :

गण एवं गणधर	—	कुंभजी आदि ३३ गणधर एवं ३३ ही गण ।
केवली	—	२८००
मनःपर्यवज्ञानी	—	२५५१
अवधिज्ञानी	—	२६००

१. जैन धर्म का मो. इ., प्र. भा., पृ. १२३

२. आगमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ. २३८

३. भाव अरिहंत १८ आत्मिक दोषों से मुक्त होते हैं।

गिरि ।

[illegible]

महाराज कुंभ द्वारा मांग अस्वीकृत करने पर उन्होंने भूमिपतियों ने अपनी सेना लेकर मिथिला पर आक्रमण कर दिया और शक्ति के रूप पर मल्ली को प्राप्त करने का विचार करने लगे ।

महाराज कुंभ इस आक्रमण का मुकाबला करने में अपने आपको असमर्थ समझकर चितित हो उठे, फिर भी किलाबंदी कर युद्ध की तैयारी में जुट गये ।

चरण बंदन के लिये बाई हुई मल्ली ने जब पिताश्री को चितित देखा और चिंता का कारण जाना तो विनयपूर्वक कहा- "महाराज ! आप किंचित नाच भी चितित न हों, मैं सब समस्या का ठीक ढंग से समाधान कर लूंगी । आप छहों राजाओं को दूत भेजकर अलग अलग रूप में आने का निमंत्रण भेज दीजिये ।"

मल्ली की योग्यता, बुद्धिमत्ता और नीति-परम्परा से प्रभावित एवं आश्चर्य होकर महाराज ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर छहों राजाओं को पृथक् पृथक् आने का निमंत्रण भिजवा दिया ।

देश के अनुसार छहों राजा मिथिला पहुँचे । वहाँ उन्हें अलग अलग बने हुए प्रवेग द्वारों से प्रवेग कराकर पूर्व निर्मित मोहन धर में ठहराया गया । उनमें एक माकेतपुरी के राजा प्रतिबुद्ध, दूसरे चम्पा नरेश चन्द्रछाग, तीसरे श्रावस्ती नगरी के नरेश दक्षी, चौथे वाराणसी के शंख, पाँचवें हस्तिनापुर के अदीनगधु और छठे काम्पिलपुर नरेश जितगधु थे । ये सब अपने अपने निर्दिष्ट अलग अलग प्रकोष्ठों में पहुँचकर अगोक बाटिका स्थित सुवर्ण-मुतली, जो कि पूर्ण रूप से मल्ली की आकृति के अनुकूल बनवाई गई थी, देखने लगे । प्रकोष्ठों की रचना कुछ इस प्रकार से की गई थी कि एक दूसरे को देखे बिना वे छहों राजा मल्ली के रूप को देख सके ।

मल्ली ने जब इन राजाओं को रूप-दर्शन में लग्नय देखा तो पुतली पर का डककन हटा दिया । डककन हटते ही चिर संचित अन्न की दुर्गन्ध चारों ओर फैल गई और सब नरेश नाक बंद कर इधर-उधर भागने की चेष्टा करने लगे ।

महाराज कुंभ द्वारा मांग अर्पित करने पर सभी भूमिपतिवर्गों ने अपनी सेना लेकर मिथिला पर आक्रमण कर दिया और मक्ति के बल पर मल्लों को प्रान्त करने का विचार करने लगे ।

महाराज कुंभ उस आक्रमण का मुकाबला करने में अपने प्रायकी असमर्थ समझकर चिन्तित हो उठे, फिर भी विज्यावंशी कर युद्ध की तैयारी में जुट गये ।

जयसिंह के पिरे लार्ड हर्बे मल्ल ने जब विज्यावंशी को विजित देना और विज्या का कारण जाना वो निम्नपूर्वक कहा- "महाराज ! आप विजित मान ही चिन्तित न हो, मैं सब सम्भवता का ठीक ढंग में समाधान कर दूँगी । आप सभी राजाओं को दूत भेजकर अपने-अपने रूप में अपने-अपने विजय और विजितों को बुलाओ ।"

मल्लों की योजना, बुद्धिमत्ता और नीति परामर्श के पश्चात् एवं आक्रमण के बाद महाराज ने सब पर सब को खींचा कर सभी राजाओं को युद्ध के लक्ष्य के लक्ष्य विचार दिया ।

२१. भगवान् श्री मुनिसुव्रत (चिल्ल-कूम-कद्यवा)

भगवान् श्री मुनिसुव्रत बीसवें तीर्थंकर हुए ।

पूर्वभव :

जम्बू द्वीप के अपर विदेह में भरत नामक विजय में चम्पा नामक सुन्दर नगरी थी । वहाँ के राजा का नाम सुरश्रेष्ठ था । वह अत्यन्त धर्मपरायण राजा था ।

एक समय नन्दन नामक तपस्त्री स्वविर चम्पानगरी में पधारे और उद्यान में ठहरे । मुनि का आगमन सुनकर राजा मुनि के दर्शनार्थ उद्यान में गया । वंदना करने के पश्चात् वह मुनि की सेवा में बैठ गया । मुनि द्वारा उसे संसार की असारता का उपदेश दिया गया । उपदेश सुनकर राजा विरक्त हो गया । राज वैभव का त्याग कर राजा ने मुनिव्रत ग्रहण कर लिया । दीक्षोपरांत उसने कठोर तप किया और बीस स्थानों की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया । दीर्घकाल तक विशुद्ध संयम का पालन करते हुए उसने अनशन द्वारा देह त्याग किया । वह प्राणत नामक दसवें स्वर्ग में महद्दिक देव बना । १

जन्म एवं माता पिता :

स्वर्ग की स्थिति पूर्ण कर सुरश्रेष्ठ का जीव श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को श्रावण नक्षत्र में स्वर्ग से निकलकर राजगृही के महाराज सुमित्र की महारानी देवी पद्मावती के गर्भ में उत्पन्न हुआ । उसी रात माता ने मंगलकारी चौदह महाशुभ स्वप्न देखे । गर्भकाल पूर्ण होने पर ज्येष्ठकृष्णा नवमी के दिन

१. आगमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ० ३२४

२२. भगवान् श्री नमि (विश्व-कामा)

भगवान् श्री नमि तीर्थंकर हुए । आपका अवतारण बीमों तीर्थ-
कर भगवान् श्री मुनिमुनि के लगभग २५ लाख वर्ष पश्चात् हुआ ।

पूर्वभवा :

जम्बूद्वीप के पश्चिम में महाविदेह के भरत विजय में कौषाम्बी नामक नगरी थी । वहाँ के राजा का नाम सिद्धार्थ था । महाराज सिद्धार्थ ने गुहर्शन मुनि ने उपदेश मुनिकर दीक्षा ग्रहण की और कठोर तप कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपासन किया । अन्त में अनशनपूर्वक देहत्याग कर अपराजित नामक अनु-
त्तर विमान में महर्द्धिक देव बने । १

जन्म एवं माता पिता :

सिद्धार्थ राजा का जीव स्वर्ग से निकलकर आश्विन शुक्ला पूर्णिमा के दिन अश्विनी नक्षत्र में मिथिला नगरी के महाराज विजय की पत्नी महारानी वप्रा के गर्भ में उत्पन्न हुआ । उसी रात माता ने मंगलकारी चौदह घुम स्वप्न देये । योग्य आहार-विहार और आचार से महारानी ने गर्भ का पालन किया ।

गर्भकाल पूर्ण होने पर माता वप्रा देवी ने श्रावण कृष्णा अष्टमी की अश्विनी नक्षत्र में कनकवर्णीय पुत्ररत्न को सुखपूर्वक जन्म दिया । तरेन्द्र और सुरेन्द्रों ने मंगल महोत्सव मनाया । २

१. आगमों में तीर्थंकर चरित्र, पृ० ३२७

२. जैन धर्म का मो० इति०, : प्र० भा०, पृ० १३६

धर्मसंस्कार :

मृत्यु पर्यन्त मरणपर्यन्त	—	१७ मृत्यु और १७ मरणपर्यन्त
मृत्युपर्यन्त	—	१६००
मृत्युपर्यन्तमरणपर्यन्त	—	१२०७
मरणपर्यन्त	—	१६००
मृत्यु पर्यन्तमरणपर्यन्त	—	४५०
मृत्युपर्यन्तमरणपर्यन्त	—	५०००
मृत्यु	—	१०००
मृत्युपर्यन्त	—	२००००
मृत्युपर्यन्त	—	४१०००
मृत्युपर्यन्त	—	१७००००
मृत्युपर्यन्त	—	३४८०००

परिनिर्वाण :

परिनिर्वाण भिक्षु के मरण पर भगवान् सम्यक्सम्यक्सत्त्व पर पदारे और एक सत्त्वः भुविर्वाण के साथ भगवान् किया । एक मरण के अनन्तर के बाद वैशाख सत्त्वः सत्त्वः के भिक्षु के मरण के योग में भुवि समस्त कर्मों का क्षय कर मोक्ष पदारे ।

भुवि सत्त्वः आर सत्त्वः भिक्षु मरण और तीव्र मरण तक केवली पर्याप्त भिक्षु के मरण का सत्त्वः करते रहे ।

भी. इति., म. भा., पृ. १२७

१. पृ. १४७

मार्ग, श्रेष्ठताओं में ही जाती है, क्योंकि इस मार्ग में अनेक तीर्थंकर, महावीर, महादेव एवं ब्रह्मदेव जन्म लेते रहे हैं । ११

मगधम् अग्निज्जेमि मा गीत गीतम पीर कुल पुणि मा ।२ पंचक और
हृदि हो पाईये । अग्निज्जेमि के माग पुणि हुन पापंकर थे । अग्निज्जेमि
पत्ते हुने हुन के माग पुण होने में उन्हें 'पुणि-पुण' कहा गया है । ३
इन कारण मगधम् अग्निज्जेमि गीतम गीतम, पंचक पुणि हुन के थे ।

मगधम् गीतम एवं पंचकम :

इस कारण सब निराश थे । श्रीकृष्ण ने अपनी पटरानियों से कहा कि वे किसी प्रकार अरिष्टनेमि को विवाह के लिये तैयार करें । इस प्रसंग में जब रानियों ने अनेकविध प्रयास कर अरिष्टनेमि से विवाह करने की प्रार्थना की तो वे केवल मुस्करा दिये । बस । इसे ही स्वीकृति मान ली गई ।

श्रीकृष्ण की एक पटरानी सत्यभामा की बहन राजीमती को अरिष्टनेमि के लिये सर्वप्रकार से योग्य पाकर श्रीकृष्ण ने कन्या के पिता उग्रसेन के समक्ष इस सम्बन्ध में प्रस्ताव रखा । उग्रसेन ने तत्काल प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । अरिष्टनेमि ने इन प्रयत्नों का विरोध नहीं किया और न ही वाचिक रूप से उन्होंने अपनी स्वीकृति भी दी ।

यथा समय अरिष्टनेमि की मध्य वारात सजी । अनुपम शृंगार कर वस्त्राभूषण से सजाकर दूल्हे को विणिष्ट रथ पर आसढ़ किया गया । समुद्र-विजय सहित समस्त दशाहं श्रीकृष्ण, बलराम और समस्त यदुवंशी उल्लसित मन के साथ सम्मिलित हुए । वारात की शोभा श्रद्धातीत थी । अपार वैभव और शक्ति का समस्त परिचय यह वारात उस समय देने लगी थी । स्वयं देवताओं में इस शोभा के दर्शन करने की लालसा जागी । सोधर्मन्द्र इस समय चिंतित थे । वे सोच रहे थे कि पूर्व तीर्थंकर ने तो २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमी स्वामी के लिये घोषणा की थी कि वे बाल ब्रह्मचारी के रूप में दीक्षा लेंगे । फिर इस समय यह विपरीताचार कैसा ? उन्होंने अवधि ज्ञान से पता लगाया कि यह घोषणा विफल नहीं होगी । वे किंचित्तुष्ट हुए किन्तु ब्राह्मण का वेश धारण कर वारात के मामने आ गये हुए और श्रीकृष्ण से निवेदन किया कि कुमार का विवाह जिस मग्न में होने जा रहा है, वह महा अनिष्टकारी है । श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण को फटकार दिया । तिरस्कृत होकर ब्राह्मण वेशधारी मोघर्मन्द्र अदृश्य हो गये, किन्तु यह चुनौती दे गये कि आप अरिष्टनेमि का विवाह कैसे करते हैं ? हम भी देखेंगे ।

वारात गन्तव्य स्थान के समीप पहुँची । उस समय बभ्रु राजीमती अत्यन्त व्यग्रमन से वर-दर्शन की प्रार्थना में गवाक्ष में बैठी थी । राजीमती अनुपम, अनिष्ट मुन्दरी थी । उसके मोन्दर्य पर देववाक्ताओं भी ईर्ष्या कम्पी थी और इस समय तो उसके आन्त्यन्तर्गिक उल्लास ने उसकी रूप माधुरी को महस्त्रगुता कर दिया था । अनुपम यशुन से महंगा राजकुमारी विना माग्न में दूब गई ।

दीक्षा एवं पारणा :

भगवान् अरिष्टनेमि के भोग-कर्म दीक्षा हो रहे थे । निरस्त होकर आत्म-नन्दान के लिये संन्यास ग्रहण करने की अभिलाषा ये व्यक्त करने लगे । लोका-त्तिक देवों की प्रार्थना से ये वर्षादान की ओर प्रवृत्त हुए । अपार धन दान कर के मानकों को संतुष्ट करते रहे । वर्ष भर दान करने के उपरांत भगवान् श्रावण शुक्ला द्वादश के दिन पूर्वान्ह के समय उत्तराशुर्क शिविका में बैठकर द्वात्रिंश नगरी के मध्य में होकर रेवत नामक उद्यान में पहुँचे । 13 वहाँ अशोक वृक्ष के नीचे स्वयं अपने आभूषण उतारते हैं और पंचमुष्टि लोच करते हैं । 14

१. चौबीस तीर्थंकर : एक पर्वा०, पृ. १२-११३ विस्तार के लिये देखें ।

(१) त्रिषष्टि शलाका०, पर्व आठ सर्ग ९

(२) उत्तराध्ययन, २२ वां अध्याय

(३) उत्तरपुराण, (४) हरिवंशपुराण, (५) भवमायना,

(६) चउपन, महापुरिसचरियं ।

(७) तीर्थंकर चरित्र, भाग २ पृ० ५८४-५९१

(८) भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण, पृ. ८६ से-९४

(९) ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर, पृ. ५२ से ६०

२. भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण, पृ. ९४

३. समयार्वांग सूत्र, १५७-१७

४. उत्तराध्ययन, २२।२४

राजीमती की शिक्षा :

राजीमती के भगवन्त में से बिनाम उगलने हुए मि भगवान् श्री अरिष्ट-नेमि पण्डित हैं जिन्होंने मोक्ष पर विचार प्रारंभ कर ली है । ये निर्मोक्षी बन चुके हैं । मुझे विचार है जो मोक्ष के दलदल में फंसी हुई हैं । अब मेरे लिये यह उचित है कि इस संसार को त्याग कर दीक्षा ग्रहण कर लूं । १२

मेरा हृदय संकल्प करके उसने फंसी में संघरे हुए भ्रमर-सदृश काले केशों को उगार दिया । यह सर्व दुःखियों को जीतकर दीक्षा के लिये तैयार हो गई । श्रीकृष्ण ने राजीमती को आशीर्वाद दिया । "हे कन्या ! इस भयंकर संसार सागर में तू मोक्ष तर ।" राजीमती ने भगवान् श्री अरिष्टनेमि के पास अनेक राजकन्याओं के साथ दीक्षा ग्रहण की । रयनेमि ने भी उस समय भगवान् के पास संयम ग्रहण किया । १३

रयनेमि को प्रतिबोध :

रयनेमि भगवान् श्री अरिष्टनेमि के लघु भ्राता थे और उनके तौरण से लौटने के बाद रयनेमि राजीमती पर मोहित हो गये थे । जब राजीमती ने प्रथम्या ग्रहण की तब भगवान् रेवताचल पर्वत पर विराजमान थे । अतः माध्वी राजीमती अनेक साध्वियों के साथ भगवान् को वन्दन करने के लिये रेवतगिरि की ओर चल पड़ी । अकस्मात् आकाश में उमड़ घुमड़ कर घटायें घिर आर्ध

१. त्रिपष्टि., ८।६।३७८-३७९

२. उत्तराष्टपयन-२२।५.६

३. भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण, पृ. १११

भगवच्चरणों में पहुँच कर वंदन किया और तप संयम का साधन करते हुए केवल ज्ञान की प्राप्ति करली और अन्त में निर्वाण प्राप्त किया । १

भविष्य कथन :

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए प्रभु द्वारिका पधारे । श्रीकृष्ण भगवान की सेवा में पधारे । श्रीकृष्ण ने अपने मन की सहज जिज्ञासा अभिव्यक्त करते हुए द्वारिकानगरी के भविष्य के सम्बन्ध में प्रश्न किया कि यह स्वर्गोपम नगरी ऐसी ही बनी रहेगी अथवा विनाश होगा ?

भगवान् ने भविष्यवाणी करते हुए कहा कि शीघ्र ही यह सुन्दर नगरी मदिरा, अग्नि और ऋषि इन तीन कारणों से नष्ट होगी ।

श्रीकृष्णा को नितामग्न देखकर प्रभु ने इस विनाश से बचने का उपाय भी बताया । उन्होंने कहा कि कुछ उपाय हैं, जिससे नगरी को अमर तो नहीं बनाया जा सकता किन्तु उसकी आयु अवश्य ही बढ़ाई जा सकती है । ये उपाय ऐसे हैं, जो सभी नागरिकों को अपनाने होंगे । संकट का पूर्वा विवेचन करते हुए भगवान् ने कहा कि कुछ मय प्रेमी यादवकुमार द्वैपायन ऋषि के साथ समझ करार करेंगे । ऋषि क्रोधावेश में द्वारिका को भस्म करने की प्रतिज्ञा पूरी करेंगे । काल की प्राप्ति कर ऋषि अग्निदेव बनेंगे और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे । अर्थात् यदि नागरिक मांस-मदिरा का सर्वथा त्याग करें और तप करने लगे तो नगर की सुरक्षा सम्भव है ।

पूर्वभव :

पूर्वभव की साधना के फलस्वरूप ही भगवान् श्री पार्श्वनाथ ने तीर्थंकर पद की योग्यता का अर्जन किया । भगवान् श्री पार्श्वनाथ का साधनारम्भ काल दशमव पूर्व से बताया गया है जिनका विस्तृत विवरण चउपन्न महापुराण चरियम्, त्रिपष्टि शलाका पुरुष चरित्र, आदि ग्रंथों में बताया गया है । भगवान् के जो दशमव बताये गये हैं उनके नाम इस प्रकार मिलते हैं—

१. मरुभूति और कमठ का भव
२. हाथी का भव
३. सहस्रार देव लोक का भव
४. किरणदेव विद्याधर का भव
५. अच्युत देवलोक का भव
६. वज्रनाभ का भव
७. वैशेख देवलोक का भव
८. मर्गनाथ का भव
९. प्राण देवलोक का भव
१०. पार्श्वनाथ का भव ।

२५. विष्वज्योति भगवान् महानीरस्तामी

(११६ वि०)

जैसा कि भगवद्गीता की कथा में जो विषयों का परिचय मिलता है, भगवान् महानीरस्तामी की कहानी है। वेदमन्त्रों के अनुसार भगवान् पाण्डवों के २५० वर्षों के माता-पिता के रूप में उनकी शांति में आने से अग्रजों की सेवा करने के लिए भगवान् महानीरस्तामी ने एक भगवान् भूमि पर अवतरित होकर विष्णु के अवतार के रूप में आया था।

भगवान् महानीरस्तामी के जन्म के पूर्व आर्यावर्त की स्थिति अति-दुर्भाग्य थी। गर्म के नाम पर अनेक विवेकहीन क्रियाकलाप आरम्भ हो चुके थे। यज्ञ-धर्म-शास्त्रों की विरुद्ध हो चुकी थी कि अपने आगमों के नाम पर एक-दूसरे को मारने-धमकाने के व्यवहारों को हीन समझते थे। ब्राह्मणों का पारस और बौद्ध-धर्म का नाम पर अनेक प्रकार की हिंसाएँ हो रही थीं। वैशाख के दिन प्रतिदिन दण्डित होकर मर जा रही थी। पाण्डव, द्रौपदी और वासुदेव-वृद्ध हो जा रहा था। गुण-पूजा का स्थान व्यक्ति-पूजा ने ग्रहण कर लिया था। स्त्री तथा दूतों को अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। स्त्री को अवला मानकर उस पर मनमाने अत्याचार हो रहे थे। उन्हें न तो धार्मिक और न ही सामाजिक क्षेत्र में स्वतंत्रता थी। दूत सेवा का पवित्र कार्य करते थे फिर भी उन्हें दीन-हीन समझा जाता था। उन पर असौम्य अत्याचार होते थे। यदि भूल से भी कोई स्त्री या दूत वेदमन्त्र सुन लेता था तो उसके कानों में गर्म पीशा भरवा दिया जाता था। यद्यपि भगवान् पाण्डवों के २५० वर्ष पुरानी परम्परा उस समय किसी न किसी प्रकार चल रही थी किन्तु कुशल एवं सशक्त नेतृत्व के अभाव में उसमें तत्कालीन हिंसा-काण्ड का विरोध करने की क्षमता नहीं थी। स्वयं उस परम्परा के अनुयायी भी अपने कर्तव्यपालन में शामिल हो गये थे।

तद्विधया किसी एक ही जन्म की अर्जनाएँ न होकर जन्म-जन्मान्तरों के सुकर्मों और सुसंस्कारों के समुच्चय का रूप होती है। भगवान् महावीर भी इस सिद्धांत के अपवाद नहीं थे। जब उनका जीव अनेक पूर्व जन्मों के पूर्व नगणार के भव में था, तभी श्रेष्ठ संस्कारों का अंकुरण उनमें हो गया था। १

पूर्वभव :

भगवान् महावीर के पूर्वभवों का उल्लेख द्বেताम्बर एवं दिगम्बर द्वा दोनों ही परम्पराओं में मिलता है। अन्तर यह है कि द्वेताम्बर परम्परा^२ में भगवान् के सत्ताइस पूर्वभवों का और दिगम्बर परम्परा^३ में तीसरा पूर्वभवों का विवरण मिलता है। सर्वसामान्य की जानकारी के लिये भगवान् के भवों की जानकारी निम्नानुसार है :—

द्वेताम्बर परम्परा

दिगम्बर परम्परा

मासिक संलेखना करके आगु पूर्ण किया ।^१ इसके बाद उनका जीव प्राणत-
देवलोक के पुष्पोत्तरावतंसक विमान में बीस सागर की स्थिति वाला देव
हुआ ।^२

जन्म माता-पिता :

ब्राह्मण कुण्ड ग्राम में एक सदाचारी ब्राह्मण ऋषभदत्त रहता था । उसकी
पत्नी का नाम देवानन्दा था । प्राणत-देवलोक की अवधि पूर्ण कर नयसार का
जीव वहाँ से चलकर ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ में आपाढ़ शुक्ला ६ उत्तरा
फाल्गुनी नक्षत्र के योग से स्थिर हो गया । उसी रात को देवानन्दा ने चौदह
महा-फलदायी स्वप्न देखे और उनकी चर्चा ऋषभदत्त से की । स्वप्नफल पर
विचार करने के उपरान्त उसने कहा कि देवानन्दा तुम्हें पुण्यशाली, लोक पूज्य,
विद्वान् और महान् पराक्रमी पुत्ररत्न की प्राप्ति होने वाली है । यह सुनकर
देवानन्दा आनन्दविभोर हो गई और पूर्ण सावधानीपूर्वक गर्भ का पालन
करने लगी ।

देवाधिप शकेन्द्र ने अपने अवधि ज्ञान से यह ज्ञात कर लिया कि भगवान्
महावीर ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ में अवस्थित हो चुके हैं तो उन्होंने आसन
से उठकर भगवान् की वन्दना की । तदुपरांत इन्द्र के मन में विचार उत्पन्न
हुआ कि परम्परानुसार तीर्थंकरों का जन्म पराक्रमी और उच्चवंशों में ही होता
रहा है, उन्होंने कभी भी क्षत्रियेत्तर कुल में जन्म नहीं लिया । भगवान्
महावीर ने ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ में जन्म लिया यह एक आश्चर्यजनक तो
है ही, अनहोनी बात भी है । इन्द्र ने निर्णय लिया कि ब्राह्मण कुल से निकाल-
कर मैं उनका साहरण उच्च और प्रतापी वंश में कराऊँ । यह विचार कर
इन्द्र ने हरिणोगमेयी को आदेश दिया कि भगवान् को देवानन्दा के गर्भ से
निकालकर राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशलादेवी के गर्भ में साहरण किया जावे ।

उस समय रानी त्रिशलादेवी भी गर्भवती थी । हरिणोगमेयी ने अत्यन्त
कीशल के साथ दोनों के गर्भों में पारस्परिक परिवर्तन कर दिया । उस समय
तक भगवान् ने देवानन्दा के गर्भ में ८२ रात्रियों का समय व्यतीत कर लिया

१. (१) आब० पूरि०, २३५, (२) त्रिषष्टि., १०।१।२२६

२. आब० पू०, २३५

भगवान् के गर्भ में गतिशील होने से माता को गर्भ की कुशलता का निश्चय हो गया और पुनः संवेत गर्भ की लहर फैल गई। माता प्रगल्भ मन से और अधिक संयमपूर्ण आहार-विहार के साथ गर्भ का पालन करने लगी। नौ मास और साढ़े सात दिन पूरे होने पर नव शुक्ला त्रयोदशी की अर्द्धरात्रि में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में (३० मार्च ५६६ ई०पू०) त्रिशला देवी ने एक परम तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया। नवजात शिशु एक सहस्र आठ लक्षों और कुन्दनवर्णी शरीर वाला था। भगवान् के जन्म से तीनों लोकों में अनुपम आभा फैल गई और घोर यातनाओं को सहने वाले नारकीय जीवों को भी क्षणभर के लिये सुखानुभूति हुई। ६४ इन्द्रों ने मेरुपर्वत पर भगवान् का जन्म कल्याणक महोत्सव मनाया। भगवान् के जन्म के प्रभाव से ही सम्पूर्ण राज्य में श्री समृद्धि होने लगी।

पुत्र जन्म की खुशी में महाराज मिद्वार्थ ने राज्य के बंदियों को कारागार से मुक्त किया याचकों और सेवकों को मुक्तहस्त से प्रीतिदान दिया। दस दिन तक बड़े हर्षोल्लास के साथ भगवान् का जन्मोत्सव मनाया गया। समस्त नगर में बहुत दिनों तक आमोद-प्रमोद का वातावरण छाया रहा। १

१. जन्म एवं माता-पिता विषय जानकारी के लिये देखें :-

(१) चौबीस तीर्थंकर : एक पर्यवेक्षण, पृ. १३३ से १३५

(२) ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर, पृ. २०५ से २१४

(३) भगवान् महावीर : एक अनुशीलन, पृ. १६७ से १६६ एवं २१६ से २२३ इसके अतिरिक्त :-

(१) त्रिषष्टि शताका पुरुष चरित, पृ. १० एवं अन्य।

(२) कल्पसूत्र (३) आवश्यक घृणि, (४) चउपन महा.,

(५) महावीर चरित्र-गुणचन्द्र (६) आचारांग सूत्र आदि आदि

भयंकर विषघर को देखकर अन्य बालक द्रघर-उघर भाग खड़े हुए किन्तु भगवान् महावीर अविचलित ही बने रहे। यहाँ तक कि उन्होंने अपने भागने वाले साथियों से कहा कि तुम लोग क्यों भागते हो ? यह खुर प्राणी क्या बिगाड़ सकता है, इसके तो एक ही मुँह है, हमारे पास दो हाथ, दो पांव, एक मुख, मस्तिष्क एवं बुद्धि है। आओ इसे पकड़कर दूर फेंक दें।

भगवान् का ऐसा कथन सुनकर सभी बालक एक साथ कह उठे कि ऐसा गलती मत करना। इसके छूना मत। इसके काटने से आदमी मर जाता है। इतना कहकर सब बालक वहाँ से भाग गये। भगवान् महावीर ने निःशंक भाव से सर्प को पकड़ा और एक रस्सी की भाँति उठाकर एक ओर रख दिया। इस पर जो बालक भाग गये थे वे पुनः आ गये।

तिन्दूपक :

महावीर द्वारा सर्प को हटाये जाने पर पुनः सभी बालक वहाँ आ गये और तिन्दूपक खेल खेलने लगे। यह खेल दो दो बालकों के जोड़े बनाकर मिला जाता है। दो बालक एक साथ लक्षित वृक्ष की ओर दौड़ते हैं और दोनों में से जो बालक वृक्ष को पहले छू लेता है, उसे विजयी माना जाता है। इस खेल में विजयी बालक पराजित बालक पर सवार होकर मूल स्थान पर आता है।¹² परीक्षाक देव भी बालक का रूप बनाकर खेल की टोली में सम्मिलित हो गया और खेलने लगा। महावीर ने उसे दौड़ में पराजित कर वृक्ष को छू लिया। तब नियमानुसार पराजित बालक को सवारी के रूप में उपस्थित होना पड़ा। महावीर उग पर आसुद्ध होकर नियत स्थान पर आने लगे तो देव ने उनको भयभीत करने और अपहरण करने के लिये सात ताड़ के बगवत ऊँचा और भयावह शरीर बनाकर डराना प्रारम्भ किया। इस अजीब दृश्य को देखकर सभी बालक घबरा गये। परन्तु महावीर पूर्ववत् निर्भय बने रहे। उन्होंने जल-जल में देखा कि यह कोई मायार्थी जीव हमारे बचन करना चाहता है। ऐसा सोचकर उन्होंने उगकी पीठ पर ग्राह्मपूर्वक ऐसा मुष्टि-प्रहार किया कि

मिना है और भावी तीर्थंकर को बीज रूप में उपस्थिति का जितने आभाव हुआ करता था । १

प्रस्तावस्था :

चातुर्वर्ण्य पूर्ण कर जब वर्धमान युवक हुए तब राजा सिद्धार्थ और रानी मिना ने इनके मित्रों के माध्यम से विवाह की बात चलाई । राजकुमार वर्धमान सहज विरक्त होने के कारण भोग-जीवन जीना नहीं चाहते थे । अतः पहले तो उन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया और अपने मित्रों से कहा कि विवाह मोह-दुःख का कारण होने से भव-ग्रमण का हेतु है । फिर भोग में रोंच का भय भी भूल जाने की वस्तु नहीं है । माता पिता को मेरे विरोध का कुछ न हो इसलिये दीमा लेने के लिये उत्सुक होते हुए भी मैं अब लज्जित नहीं हो पा रहा हूँ ।

चित्त सदा वर्धमान और उनके मित्रों में परस्पर इस प्रकार की बात हो रही थी कि माता मिना देखी वहाँ भा गई । वर्धमान ने छड़े होकर माता से सते ज-इच्छा प्रकट किया । माता ने कहा "वर्धमान ! मैं जानती हूँ कि तुम भोगों से विरक्त हो, फिर भी हमारी प्रवृत्त इच्छा है कि तुम योग्य राज-माता से सम्बिहारा करो ।"

मिलता है और भावी तीर्थंकर को बीज रूप में उपस्थिति का जिनसे आभास हुआ करता था । १

गृहस्थावस्था :

बाल्यकाल पूर्ण कर जब वर्धमान युवक हुए तब राजा सिद्धाय और रानी त्रिशला ने इनके मित्रों के माध्यम से विवाह की बात चलाई । राजकुमार वर्धमान सहज विरक्त होने के कारण भोग-जीवन जीना नहीं चाहते थे । अतः पहले तो उन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया और अपने मित्रों में कहा कि विवाह मोह-बुद्धि का कारण होने से भव-भ्रमण का हेतु है । फिर भोग में रोग का भय भी भून जाने की वस्तु नहीं है । माता पिता को मेरे वियोग का दुःख न हो इसलिये दीक्षा लेने के लिये उत्सुक होते हुए भी मैं अब तक दीक्षित नहीं हो पा रहा हूं ।

जिस समय वर्धमान और उनके मित्रों में परस्पर इस प्रकार की बात हो रही थी कि माता त्रिशला देवी वहां आ गई । वर्धमान ने घड़े होकर माता के प्रति आदरभाव प्रकट किया । माता ने कहा “वर्धमान ! मैं जानती हूं कि तुम भोगों में विरक्त हो, फिर भी हमारी प्रवृत्ति है कि तुम योग्य राज-कन्या से पाणिग्रहण करो ।”

अन्ततः माता-पिता के आग्रह के सम्मुख वर्धमान महावीर को भुलना पड़ा और वसंतपुर के महागामन्त समरवीर की त्रियम्बरी यशोदा के साथ शुभ भुम्भे में पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ ।

मर्मकाल में ही माता के अत्यधिक रोगों को देखकर वर्धमान ने अग्रिम कह दिया कि जब तक माता-पिता जीवित रहेंगे, वे दीक्षा ग्रहण नहीं करेंगे ।

बैठकर पशुविध आहार का त्याग कर, संन्यास ग्रहण किया और फिर अग्निमं
मरणांतिक संन्यासना से भूषित जरीर वाले काल के समय में काल कर अच्युत
कल्प (बारहवें स्वर्ग) में देवस्वर्ग में उत्पन्न हुए। वे स्वर्ग में व्यवहार महाविदेह
में उत्पन्न होगे और सिद्धि प्राप्त करेंगे। ११

गृहस्थ-योगी दीक्षा की तैयारी :

माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त दीक्षाव्रत अंगीकार करने की भावना
बलवती हो गई। अब उन्हें अपने मार्ग में किसी भी प्रकार की बाधा दिग्राई
नहीं दे रही थी किन्तु फिर भी उन्हें अपने ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन से अनुमति
प्राप्त करनी थी। नन्दिवर्धन अब उनके लिये पिता के समान थे। नन्दिवर्धन
का उन पर स्नेह भी अगाध था। भगवान् ने दीक्षा ग्रहण करने का दृढ़ विचार
किया और मर्यादा के अनुरूप अपने अग्रज से अनुमति की याचना की। माता-
पिता की मृत्यु हो जाने के कारण नन्दिवर्धन भी इस समय दुःखी थे। वे अपने
आपको अनाश्रित-सा अनुभव कर रहे थे। ऐसी स्थिति में जब महावीर ने
दीक्षा की अनुमति मांगी तो उनके हृदय को भीषण आघात लगा। नन्दिवर्धन
ने उनसे कहा कि इस असहाय अवस्था में मुझे तुमसे बड़ा सहारा मिल रहा
है। तुम भी यदि मुझे एकाकी छोड़ गये तो मेरा और राज्य का क्या भविष्य
होगा? इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कदाचित् मेरा जीवन
रहना ही असम्भव हो जायगा। अब तो तुम गृह त्याग मत करो। इसी में हम
सबका हित है। इस हादिक अभिव्यक्ति ने भगवान् महावीर के निर्मल मन
को द्रवित कर दिया और वे अपने आग्रह की पुनरावृत्ति नहीं कर सके। नन्दि-
वर्धन के अभ्युपदेश में वर्धमान की मानसिक दृढ़ता बड़ निकली और उन्होंने
अपने भावी कार्यक्रम की कुछ समय के लिए स्वर्गित रखने का निश्चय कर
लिया।

ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन की इच्छा के अनुरूप महावीर गृहस्थ तो बने रहे,
किन्तु उनकी संसार के प्रति उदासीनता और गहरी होती गयी। भगवान्
महावीर ने इस समय राजप्रासाद और राजपरिवार में रहते हुए भी एक योगी
की भांति जीवन व्यतीत किया और अपनी अद्भुत संयम-शक्ति का परिचय

लोकांतिक देव भगवान् को नमस्कार करते स्वरूपान लीट गये ।

अब नन्दिनवर्धन भी अपने प्रिय वन्धु को मरने का आग्रह नहीं कर सकते थे । जैसे जैसे वियोग का समय निकट आ रहा था, वैसे वैसे ही उनकी उदासी भी बढ़ती जा रही थी । उन्होंने विवश होकर अपने मेवकों को महाभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाने की आज्ञा प्रदान की । भगवान् का निष्क्रमण का अभिप्राय जानकर भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक जाति के देव अपनी ऋद्धि सहित अभियकुंड आये । प्रथम स्वर्ग के स्वामी शकेन्द्र ने वैक्रिय दक्षि से एक विशाल स्वर्ण-मणि एवं रत्नजड़ित देवच्छन्दक (भव्य मण्डप जिसके मध्य में पीठिका बनाई हो) बनाया जो परम मनोहर, सुंदर एवं दर्शनीय था । उसके मध्य में एक भव्य सिंहासन रखा जो पादपीठिका सहित था । तत्पश्चात् इन्द्र भगवान् के निकट आया और भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया । नमस्कार करने के उपरांत भगवान् को लेकर देवच्छन्दक में आया और भगवान् को पूर्व दिशा की ओर सिंहासन पर बिठाया । फिर शतपाक और सहस्रपाक तेल से भगवान् का मर्दन किया । शुद्ध एवं सुगन्धित जल से स्नान कराया । तत्पश्चात् गंधकापायिक वस्त्र (लाल रंग का सुगन्धित श्रंगपोछना) से शरीर पोंछा गया और लाखों के मूल्य वाले नीतल रक्तगोमर्ष चन्दन का विलेपन किया । फिर चतुर कलाकारों से बनवाया हुआ और नासिका की वायु से उड़ने वाला मूल्यवान, मनोहर अत्यन्त कोमल तथा सोने के तारों से जड़ित, हंस के समान श्वेत ऐसा वस्त्र-युगल पहिनाया और हार, अर्धहार एकावलि आदि हार, कटि सूत्र, मुकुट आदि आभूषण पहिनाये । विविध प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से अंग सजाया । इसके बाद इन्द्र ने दूसरी बार वैक्रिय समुद्रघात करके एक बड़ी चन्द्रप्रभा नामक शिविका का निर्माण किया । वह शिविका भी दैविक विशेषताओं से युक्त अत्यन्त मनोहर एवं दर्शनीय थी । शिविका के मध्य में रत्नजड़ित भव्य सिंहासन पादपीठिका युक्त स्थापित किया और उस पर भगवान् को बैठाया । प्रभु के पास दोनों ओर शकेन्द्र और ईशानेन्द्र खड़े रहकर चंवर बुलाने लगे । पहले शिविका मनुष्यों ने उठाई, फिर देवों ने । शिविका के आगे देवों द्वारा अनेक प्रकार के वाद्य यंत्र बजाये जाने लगे । निष्क्रमण यात्रा बढ़ने लगी और इस प्रकार जय जयकार होने लगा—

“भगवन् ! आपकी जय हो, विजय हो । आपका कल्याण हो । आप ज्ञान

मुहुर्त था, चतुर्यं प्रहर था तथा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र था । सिद्धों को नमस्कार करके भगवान् ने सामायिक चरित्र स्वीकार किया । जिस समय प्रभु ने सामायिक प्रतिज्ञा स्वीकार की उस समय देव और मानव सभी चित्रलिखित से रह गये ।

देवेन्द्र ने भगवान् को देवदूष्य (दिव्य वस्त्र) प्रदान किया । भगवान् ने अपना जीत आचार समझकर उसे वामस्कंध पर धारण किया । आचारांग, कल्पसूत्र, आवश्यक चूर्ण आदि में एक देवदूष्य वस्त्र लेकर दीक्षा लेने का उल्लेख है । भगवान् महावीर ने एकाकी दीक्षा ग्रहण की थी ।

दिगम्बर परम्परा के ग्रंथों में देवदूष्य वस्त्र के साथ संयम ग्रहण का उल्लेख नहीं है ।

दीक्षा लेते ही महावीर को मनः पर्यवज्ञान हुआ । जिससे ढाई द्वीप और दो समुद्र तट के समस्त प्राणियों के मनोगत भावों को जानने लगे थे ।

अभिग्रह :



उनका साधक जीवन बड़ा ही रोमांचक, प्रेरक और शौर्यपूर्ण रहा है। आचार्य भद्रबाहु ने इसीलिये तो इस सत्य को मुक्त मन से उद्धृत किया है—“एक ओर तेईस तीर्थंकरों के साधक जीवन के कष्ट और एक ओर अकेले महावीर के। तेईस तीर्थंकरों की तुलना में भी महावीर का जीवन अधिक कष्ट प्रवण, उपसर्गमय एवं तप प्रधान रहा” ११

भगवान् के साधनाकाल में उन्हें जो दैविक, पाशविक एवं मानुषिक उपसर्ग, कष्ट एवं परीपहं उपस्थित हुए और उन प्रसंगों पर उनकी श्रुतःकरण की करुणा, कोमलता, कठोर तितिक्षा, दृढ़ मनोबल और अविचल ध्यान समाधि की जो अपूर्व विजय हुई है—उसका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार दिया जा रहा है।

क्षमामूर्ति महावीर-गोपालक प्रसंग २ :

जिस समय भगवान् कुमारग्राम के बाहर स्थाणु की भांति अचल ध्यानस्थ खड़े थे, उस समय एक ग्वाला अपने बैलों को लिये वहाँ आया। गो दोहन का समय हो रहा था। ग्वाले को गाँव में जाना था। पर उसके सामने समस्या थी कि बैलों को किसे संभलाए? उसने इधर-उधर दृष्टि फैलाकर देखा, एक श्रमण ध्यान में स्थिर खड़ा है। ग्वाले ने निकट आकर कहा—“जरा बैलों का ध्यान रखना, मैं शीघ्र ही गायें दुहकर आता हूँ।”

ग्वाला चला गया। महाश्रमण अपने ध्यान में तल्लीन थे। समाधि में स्थिर थे। जिन्होंने अपने शरीर की रखवाली त्याग दी वे भला किसके बैलों की रखवाली करते?

(१) तीर्थंकर महावीर, श्री मधुकर मुनि एवं अन्य, पृ० ५६

(२) १. त्रिपिट० १०।३

२. तीर्थंकर महावीर पृ० ६४-६४

३. ऐति० काल के तीन तीर्थंकर पृ० २२६-२२७

४. भगवान् महावीर : एक अनुशीलन, पृ० २६२-२६३

५. भगवान् महावीर का आदर्श जीवन, पृ० १४८-१५०

६. तीर्थंकर चरित्र, भाग ३ पृ० १४७-१४८

७. आवश्यक ज्ञान, पृ० २६६

८. महावीर चरित्र, ५।१४४

तनिक भी पीछे नहीं रहेंगे। प्रभु ! आप आज्ञा दें तो मैं आपके साथ रहकर इन बाधाओं को दूर करता चलूँ।

भगवान् को इसकी आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने उत्तर दिया कि मेरी साधना स्वाश्रयी है। अपने पुरुषार्थ से ही ज्ञान व मोक्ष सुलभ हो सकता है। कोई भी अन्य इसमें सहायक नहीं हो सकता। आत्मवल ही साधक का एकमात्र आश्रय होता है। भगवान् ने इस सिद्धांत का आजीवन निर्वाह किया।

तापस के आश्रम में :

साधक महावीर विहार करते करते एक समय भोराक ग्राम के समीप पहुंचे, जहाँ तापसों का एक आश्रम था। वृद्धजंत इस आश्रम के कुलपति थे और ये भगवान् के पिता के मित्र थे। कुलपतिजी ने भगवान् से आग्रह किया कि वे इसी आश्रम में चातुर्मास व्यतीत करें। भगवान् ने भी इस आग्रह को स्वीकार कर लिया और वे एक पर्ण कुटिया में खड़े होकर ध्यानावस्थित हो गये।

कुटियाएं घास-फूस से निर्मित थीं और सभी तापसों की अलग अलग कुटियाएं थीं। वर्षा का प्रारम्भ मली प्रकार नहीं हो पाया था और घास भी नहीं उग पाई थी। अतः गावें आश्रम में घुसकर इन कुटियाओं की घास चर लिया करती थीं। अन्य तापस तो गावों को भगाकर अपनी कुटियाओं की रक्षा कर लिया करते थे किन्तु ध्यानमग्न रहने वाले महावीर को इतना अयकाग कहीं ? वे तो जैसे भी समत्व से परे हो गये थे। ये अन्य तापस अपनी कुटिया के गाय गाय महावीर की कुटिया की रक्षा भी कर लिया करते थे।

एक अवसर पर जब सभी तापस आश्रम से बाहर कहीं गये हुए थे, तो गावों ने पीछे से सभी कुटिया चोंगट कर दिया। जब तापस लौटकर आश्रम में आये और आश्रम की दुर्दशा देखी तो बहुत दुःखी हुए। वे भगवान् पर भी क्रोधित हुए कि वे इतनी भी चिंता नहीं रख सके। तापस क्रोध में आकर भगवान् की कुटिया की ओर चले। वहाँ उन्होंने जो देखा तो अचम्बित रह गये। उनकी कुटिया की गायें घास भी गायें चर गई थीं और वे अर्धा भी ध्यान में लीन क्यों के रहीं थीं ? इस घोर और अटल तपस्या के कारण इनमें के मन में ईर्ष्या की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी। तापसों ने कुलपति

यक्ष का उपद्रव :

विचरणशील साधक भगवान् महावीर अस्थिक ग्राम में पहुँचे । ग्राम के पास ही एक प्राचीन और ध्वस्त मंदिर था, जिसमें यक्ष बाधा बनी रहती है— इस बाधा की सूचना महावीर को भी प्राप्त हो गयी । ग्रामवासियों ने यह सूचना देते हुए अनुरोध किया कि वे वहाँ विश्राम न करें । वास्तव में वह मन्दिर मुनसान और बहुत ही डरावना था । रात्रि में कोई भी यहाँ ठहरता नहीं था, यदि कोई दुस्साहस कर बैठता तो वह जीवित नहीं रह पाता था ।

भगवान् ने तो साधना के लिये सुरक्षित स्थान चुनने का व्रत धारण किया था । मन में सर्वथा निर्भीक ही थे । अतः उन्होंने उसी मंदिर को अपना साधना-स्थल बनाया । वे वहाँ खड़े होकर ध्यानस्थ हो गये । ऐसे निदर, साहसी, व्रतपालक और अटल निदचयी थे—भगवान् महावीर । वह भाद्रपद-सुदी ५ का दिन था ।

रात्रि के घोर अन्धकार में अत्यन्त भीषण अट्टहास उस मंदिर में गूँजे लगा । भयानकता गमस्त वातावरण में छा गयी, किन्तु भगवान् महावीर निश्चल ध्यानमग्न हो रहे । यक्ष को अपने पराक्रम की यह उपेक्षा असह्य मगी । यह क्रुद्ध हो उठा और विकराल हाथी, हिंस्र सिंह, विशालकाय दैत्य, भयंकर विषधर आदि विविध रूप धारण कर भगवान् को घातकित करने के प्रयाग करता रहा । अनेक प्रकार से भगवान् को उसने असह्य, घोर काट पहुँचाये । साधना में अटल महावीर रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए । वे अपनी साधना में तो क्या विघ्न पड़ने देते, उन्होंने आह-कराह तक नहीं की ।

जब सर्वाधिक प्रयत्न करके घोर अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग करके भी यक्ष शून्यताणि भगवान् को किसी प्रकार कोई हानि नहीं पहुँचा सका, तो यह पराजित होकर सरग का अनुभव करने लगा । यह विचार करने लगा कि यह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है—निदचयी ही महामानव है । यह धारणा करने ही वह अपनी समस्त क्षमावृत्ति का त्याग कर भगवान् के सरगों में प्रवेश करने लगा और अपने अपराध के लिये क्षमा माँगी ।

भगवान् ने समाधि ली । उनके नेत्रों में स्नेह और कृपा टपक रही थी । यक्ष को प्रतिबोध दिया जिससे उसके अन्तरात्मा मुक्त हो, मन का भय

चण्डकोशिक को प्रतिबोध

यह प्रसंग हिंसा पर अहिंसा की विजय का प्रतीक है। एक बार भगवान् को कनकखल से श्वेताम्बी पहुंचना था। जिसके लिये दो मार्ग थे। एक मार्ग लम्बा होते हुए सुरक्षित था और सामान्यतः उसी का उपयोग किया जाता था। दूसरा मार्ग यद्यपि लघु था तथापि बड़ा भयंकर था इस कारण इस मार्ग से कोई भी यात्रा नहीं करता था। इस मार्ग में एक घना वन था, जिसमें एक—श्रुतिभयंकर विषधर चण्डकोशिक नामक नाग का निवास था जो 'दृष्टिविष' सर्व था। यह मात्र अपनी दृष्टि डाल कर ही जीवों को उस लिया करता था। इस नाग के विष की विकरालता के विषय में यह प्रसिद्ध था कि उसकी फूफकार मात्र से उस वन के समस्त जीव जन्तु तो मर ही गये हैं, वरन् समस्त वनस्पति भी जल गई है। इससे इस प्रचण्ड नाग का अत्यधिक आतंक था।

भगवान् ने श्वेताम्बी जाने के लिये इसी छोटे भयंकर मार्ग का चुनाव किया। कनकखलवासियों ने भगवान् को उस भयंकर विपत्ति से अवगत कराया और इस मार्ग से न जाने का सविनय अनुरोध भी किया किन्तु भगवान् का निश्चय तो अटल था। वे इसी मार्ग पर निर्भीकतापूर्वक बढ़ गये। भयंकर विष को मानो अमृत का प्रवाह परास्त करने के लिये सोत्साह बढ़ रहा हो।

भगवान् सीधे जाकर चण्डकोशिक की चांवी के समीप ही खड़े होकर ध्यानमग्न हो गये। कष्ट और संकट की निमंत्रित करने का और कोई अन्य उदाहरण इसकी समानता नहीं कर सकता? घोर विष को अमृत बना देने की शुभाकांक्षा ही भगवान् की अन्तःप्रेरणा थी जिसके कारण इस भयप्रद स्थल पर भी वे अविचलित रूप से ध्यानमग्न बने रहे।

अपने भयानक विष में वातावरण को दूषित करता हुआ चण्डकोशिक भ्रूमं से बाहर निकल आया और अपने प्रतिद्वंद्वी मानव को देखकर वह हिंसा के

उसने अष्टम स्वर्ग की प्राप्ति की । भगवान् के पदार्पण से उसका उद्धार हो गया । १

नौका-रोहण

चण्डकोशिक का उद्धार कर भगवान् विहार करते हुए उत्तर वाचाला पधारे । वहाँ उनका नाग सेन के यहाँ पन्द्रह दिन के उपवास का परमान्न से पारणा हुआ । फिर वहाँ से विहार कर भगवान् द्वेताम्बिका नगरी पधारे । वहाँ के राजा प्रदेशी ने भगवान् का खूब भावभीना सत्कार किया ।

द्वेताम्बिका से विहार कर भगवान् सुरभिपुर की ओर चले । बीच में गंगा नदी बह रही थी । अतः गंगा पार करने के लिये भगवान् महावीर की नौका में बैठना पड़ा । ज्यों ही नौका चली त्यों ही दाहिनी ओर से उल्लू के शब्द सुनाई दिये । उनको सुनकर नौका पर सवार नेमिलनिमित्त ने कहा— "बड़ा संकट आने वाला है, किन्तु इस महापुरुष के प्रबल पुण्य से हम सब बच जायेंगे ।" थोड़ी दूर आगे बढ़ते ही आंधी के प्रबल भोंकों में पड़कर नौका भँवर में पड़ गई । कहा जाता है कि त्रिपृष्ठ के भव में महावीर ने जिस सिंह को मारा था उसी के जीव ने बैर-भाव के कारण सुदंष्ट्र देव के रूप से गंगा में महावीर के नौकारोहण के बाद तूफान उत्पन्न किया । समस्त यात्री घबरा उठे किन्तु भगवान् महावीर निर्भय थे । अन्त में भगवान् की कृपा से आंधी रुकी और नाग गंगा के किनारे लगी । कम्बल और दाम्बल नामक नागकुमारों ने दम उपगम के निवारण में भगवान् की सेवा की । २

(१) १. त्रिपृष्ठ, १०।३

२. आश्व० भूति प्रथम भाग, पृ० २७९.
३. आश्व० निपु०, भा० ४६।७
४. ऐति० काव्य के तीन तीर्थंकर, पृ० २३५ से २३८
५. तीर्थंकर महावीर, पृ० १७३ से १७७
६. तीर्थंकर तीर्थंकर : एक पर्व०, पृ० १४५-१४६
७. ऐति० काव्य के तीन तीर्थंकर, पृ० २३८
८. प्रबन्धक भूति, पूर्वभाग पृ० २८०-२८१

भगवान् महावीर पर भला दसका क्या प्रभाव होता ? उनके निरा में गोणालक के प्रति कोई दुर्विचार भी कभी नहीं आया । भगवान् वन में विहाररत थे, गोणालक भी उनका अनुसरण कर रहा था । उसने वहाँ एक तपस्वी के प्रति दुर्विनीत व्यवहार किया और कुपित होकर उमने गोणालक पर तेजोलेश्या का प्रहार कर दिया । प्राणों के भय से वह भगवान् से रक्षा की प्रार्थना करने लगा । करुणा की प्रतिमूर्ति भगवान् ने शीतलेश्या के प्रभाव से उम तेजोलेश्या को शान्त कर दिया । अथ तो गोणालक तेजोलेश्या की विधि बताने के लिये भगवान् से बारम्बार अनुनय विनय करने लगा और भगवान् ने उम पर कृपा कर दी । संहार साधन पाकर उसने भगवान् का आश्रय त्याग दिया और तेजोलेश्या की साधना में लग गया । कालान्तर में उसने तेजोलेश्या का प्रयोग भगवान् पर ही किया किन्तु अंततः वह ही समाप्त हुआ । १

कटपूतना का उपद्रव

भगवान् महावीर ग्रामक-सन्निवेश से विहार कर शालीशीर्ष के रमणीय उद्यान में पधारे । माघ मास का सप्तमनाता समीर प्रवहमान था । साधारण मनुष्य घरों में वस्त्र ओढ़कर भी कांप रहे थे, किन्तु उस ठण्डी रात में भी भगवान् वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खड़े थे । उस समय कटपूतना नामक व्यन्तरी देवी वहाँ आई । भगवान् को व्यानावस्या में देखकर उसका पूर्व वैर उद्बुद्ध हो गया । वह परिव्राजिका का रूप बनाकर मेघधारा की तरह जटाओं से भीषण जल बरसाने लगी और भगवान् के कोमल स्कंधों पर खड़ी होकर तेज हवा करने लगी । बर्फ-सा शीतल जल और तेज पवन तलवार के प्रहार से भी अधिक तीक्ष्ण प्रतीत हो रहा था, तथापि भगवान् अपने उत्कट ध्यान से विचलित नहीं हुए ।

उस समय समभावों की उच्च श्रेणी पर चढ़ने से भगवान् को विशिष्ट अवधिज्ञान (लोकावधि ज्ञान) की उपलब्धि हुई । परीपह सहन करने की अमिन तितिक्षा एवं समता को देखकर कटपूतना चकित थी, विस्मित थी ।

(१) १. चौबोस तीर्थंकर : एक पद्य०, पृ० १५०

२. ऐति० काल के तीन तीर्थंकर, पृ० २३६-२४३

३. भगवान् महावीर : एक अनु०, पृ० ३१८ से ३२६

४. दीमक उत्पन्न की जो शरीर को काटने लगी ।
५. विच्छेद्यों द्वारा टंक लगवाये ।
६. नेवले उत्पन्न किये जो भगवान् के मांसवण्ड को छिन्न भिन्न करने लगे ।
७. भीमकाय सर्प उत्पन्न कर प्रभु को उन सर्पों से कटवाया ।
८. चूहे उत्पन्न किये जो शरीर में काट काटकर ऊपर पेक्षाव कर जाते ।
- ९.-१०. हाथी और हथिनी प्रकट कर सूँडों से भगवान् के शरीर को उतार-वाया और उनके दाँतों से प्रभु पर प्रहार करवाये ।
११. पिशाच बनकर भगवान् को उड़ाया घमकाया और बर्छी मारने लगा ।
१२. बाल बनकर भगवान् के शरीर का नखों से किरारण किया ।
१३. मिलासों और पिशला का रूप बनाकर कम्पाविलाप करते दियाया ।
१४. भगवान् के पैरों के नीचे आग जलाकर भोजन पकाने का प्रयास किया ।
१५. वायुमान का रूप बनाकर भगवान् के शरीर पर पक्षियों के पित्रर लटकाने को लोको और नखों से प्रहार करने लगे ।
१६. आग्नि का रूप बना कर कई बार प्रभु के शरीर को उड़ाया ।

वहाँ से भगवान् लज्जमान पलाये । वहाँ उस दिन कोई मन्दिरवासी था । यहाँ सम्मन करने में गौर पावती गई थी । भगवान् भिक्षा के लिये पलाये तो संगम ने सर्वत्र 'अनेकणा'१ कर दी । भगवान् ऐसे संगमपत्नी उपसर्ग समझकर लौट आये और ग्राम के बाहर छ्यान में लीन हो गये ।

इस प्रकार लगातार दस मास तक अगणित कष्ट देखे पर भी जब संगम ने देखा कि महावीर अपनी गायना से विचलित नहीं हुए बल्कि वे पूर्ववत् ही विद्युद् भाव से जीवमान का हित सोच रहे हैं तो परीक्षा करने का उसका धैर्य टूट गया, वह हताश हो गया । पराजित होकर वह भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ और बोला-- "भगवन् ! देवेन्द्र ने आपके विषय में जो प्रशंसा की है, वह सत्य है । प्रभो ! मेरे अपराध क्षमा करो । वास्तव में आपकी प्रतिज्ञा सच्ची और आप उसके पारगामी हैं । अब आप भिक्षा के लिये जायें, किसी प्रकार का उपसर्ग नहीं होगा ।"

संगम की बात सुनकर भगवान् बोले-- "संगम ! मैं इच्छा से ही तप या भिक्षा ग्रहण करता हूँ । मुझे किसी के आश्वासन की अपेक्षा नहीं है ।" दूसरे दिन छह मास की तपस्या पूर्णकर भगवान् उसी ग्राम में भिक्षार्थ पधारे और 'वस्सपालक' बुढ़िया के यहाँ परमान्त से पारणा किया । दान की महिमा से वहाँ पर पंच-दिव्य प्रकट हुए । यह भगवान् की दीर्घकालीन उपसर्ग सहित तपस्या थी । २

१. एपणा समिति के दोषों से सहित

२. (१) ऐति. फाल के तीन तीर्थंकर, पृ. २५२ से २५५

(२) भगवान् महावीर : एक अनु., पृ. ३३१ से ३४०

(३) आब. सू., पृ. ३११, ३१२, ३१३

२०० : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

घरण लेकर आया है और पुनः वहीं भागा जा रहा है । कहीं यह वज्र भगवान् को कष्ट न दे । अतः वह शीघ्र ही वज्र लेने के लिये दौड़ा । चमरेन्द्र ने अपना सूक्ष्म रूप बनाया और भगवान् के चरणों में आकर छिप गया । वज्र महावीर के निकट तक पहुंचने से पूर्व ही इन्द्र द्वारा पकड़ लिया गया और चमरेन्द्र को भगवान् का घरणागत होने के कारण क्षमा कर दिया ।

अगुरराज गोधमं गभा में कभी जाते नहीं, किन्तु अनन्त काल के बाद अग्निहंत महावीर की घरण लेकर गये जिसे जैन साहित्य में आश्रयमान माना गया है ।

ग्वाले द्वारा कानों में कील

२०४ : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

तपश्चरण :

आचार्य भद्रबाहु के अनुसार श्रमण भगवान् महावीर का तपः कर्मअन्य तेईस तीर्थंकरों की अपेक्षा अधिक उग्र और अधिक कठोर था । यद्यपि उनका साधनाकाल बहुत लम्बा नहीं था, पर उपसर्गों की शृंखला ज्वालागुली की भीषण ज्वालाओं की भांति एक के बाद एक उछालों मार मारकर संतप्त करती रही । उनके द्वारा आचरित तपः साधना की तालिका इस प्रकार है : २

छह मासिक तप-१	१८० दिन का
पाँच दिन कम छह मासिक तप-२	१७५ दिन का
चातुर्मासिक तप-६	१२० दिन का एक तप
तीन मासिक तप-२	६० दिन का एक तप
सार्धद्वि मासिक तप-२	७५ दिन का एक तप
द्विमासिक तप-६	६० दिन का एक तप
सार्ध मासिक तप-२	४५ दिन का एक तप
मासिक तप-१२	३० दिन का एक तप
पाक्षिक तप-७२	१५ दिन का एक तप
भद्रप्रतिमा-१२	२ दिन का एक तप
महामभद्र प्रतिमा-१	४ दिन का एक तप
सर्वतोभद्र प्रतिमा-१	दश दिन का एक तप
सोलह दिन का तप-१	
अष्टम भक्त तप-१२	३ दिन का एक तप
पण्ड भक्त तप-२२६	दो दिन का एक तप

इसके अतिरिक्त दसम-भक्त (चार दिन का उपवास) आदि अन्य तपश्चर्याएँ भी थीं । प्रभु की तपश्चर्या निरन्तर होती थी और उसमें ध्यान योग की विशिष्ट प्रक्रियाएँ भी चलती रहती थीं । ३

१. आश्व. निर्घुणित, २६२
२. तीर्थंकर महावीर, पृ. १२८
३. (१) तीर्थंकर महावीर, पृ. १२८
(२) आश्व. निर्घु. ४१६

२०६ : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

७. एक सहस्रत्र तरंगी महासागर को अपनी भुजाओं से तैरकर पार करते हुए देखा ।
८. एक महान तेजस्वी सूर्य को देखा ।
९. मानुषेत्तर पर्वत को वेडूर्यमणिवर्ण वाली अपनी आंती से परिवेष्टित देखा ।
१०. महान मेरु पर्वत की चूलिका पर स्वयं को सिंहासनस्थ देखा

दस स्वप्नों का फल

१. निकट भविष्य में भगवान् महावीर मोहनीय कर्मों को समूल नष्ट करेंगे ।
२. शीघ्र ही भगवान् शुक्ल ध्यान के अंतिम चरण में पहुंचेंगे ।
३. भगवान् विविध ज्ञान रूप श्रुत की देशना करेंगे ।
४. भगवान् दो प्रकार के धर्म साधु-धर्म और श्रावक-धर्म का कथन करेंगे ।
५. भगवान् चतुर्विध संघ की स्थापना करेंगे ।
६. चार प्रकार के देव भगवान् की सेवा करेंगे ।
७. भगवान् संसार सागर को पार करेंगे ।
८. भगवान् केवलज्ञान प्राप्त करेंगे ।
९. भगवान् की कीर्ति समस्त मनुष्य लोक में फैलेगी ।
१०. भगवान् सिंहासनारूढ़ होकर लोक में धर्मोपदेश करेंगे । १

केवलज्ञान की प्राप्ति

वैशाख शुक्ल दशमी के दिन का अंतिम प्रहर था । उस समय भगवान् को छट्ठ भक्त की निजला तपस्या चल रही थी । आत्म मंत्रन चरमसीमा पर पहुंच रहा था, क्षणिक श्रेणी का आरोहण कर, शुक्ल ध्यान के द्वितीय चरण में सर्वप्रथम मोहनीय कर्म का क्षय हुआ फिर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अग्निरात्र कर्मों का क्षय हुआ, दस प्रकार दस चार घाती कर्मों का क्षय किया और उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र के योग में केवलज्ञान केवलदर्शन प्रकट हुआ । भगवान् अब त्रिज और अग्रिहंत हो गये । सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये ।

१. स्थानांग सूत्र - मुनिश्री क० गा० कमल, पृ० ११०० से ११०३.

“उप्पन्ने इवा, विगमे इवा, धुवे इवा” इस प्रकार त्रिपदी का ज्ञान दिया। इसी त्रिपदी से इन्द्रभूति आदि विद्वानों ने द्वादशांग और दृष्टिवाद के अन्तर्गत चौदह पूर्व की रचना की और वे गणघर कहलाये।

महावीर की वीतरागमयी वाणी सुनकर एक ही दिन में इन्द्रभूति आदि चार हजार चार सौ शिष्य हुए। प्रथम पाँचों के पाँच पाँच सौ, छठे सातवें के साढ़े तीन तीन सौ और शेष अंतिम चार पंडितों के तीन तीन सौ छात्र थे। इस प्रकार कुल मिलाकर चार हजार चार सौ हुए। भगवान् के धर्म संध में राजकुमारी बंदनवाला प्रथम साध्वी बनी। शंख, शतक आदि ने श्रावक धर्म और सुलसा आदि ने श्राविका धर्म स्वीकार किया। इस प्रकार मध्यम पावा-पुरी का वह ‘महासेनवन’ और वंशाव्य द्वाकला एकादशी का दिन धन्य हो गया जब भगवान् महावीर ने श्रुतधर्म और चारित्र-धर्म की शिक्षा देकर साधु साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध संध की स्थापना की और स्वयं भाव तीर्थंकर कहलाये। ११

धर्म संध :

साधना की दृष्टि से भगवान् महावीर के धर्म संध में तीन प्रकार के साधक थे :-

१. प्रत्येक बुद्ध - जो प्रारम्भ से ही संधीय मर्यादा से मुक्त रहकर साधना करते रहते।
२. स्वविरकल्पी- जो संधीय मर्यादा एवं अनुशासन में रहकर साधना करते।
३. जिगकल्पी - जो विशिष्ट साधना पद्धति अपनाकर संधीय मर्यादा से मुक्त होकर तपश्चरण आदि करते।

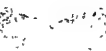
१. ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर, पृ० २६३ से २६६

२. षष्ठ्यं महा० ख० पृ० २६६ से ३०३

३. महावीर चरित्र, (नेमिचन्द्र रचित) ११६४

४. समवायार्ण, पृ० ५७

५. भगवान् महावीर : एक अनु०, पृ० ३७६ से ४१२



भगवान् महावीर ने गणतंत्रीय पद्धति पर विशाल धर्म संघ की स्थापना करके उस युग में एक विस्मयजनक उदाहरण प्रस्तुत किया था। लोगों की श्रामधारणा थी कि जैसे सिंह वन में अकेला स्वेच्छापूर्वक घूमा करता है, वैसे ही साधक अकेले स्वेच्छया भ्रमणशील होते हैं। सिंहों का समूह नहीं होता साधकों का संघ नहीं होता। वैदिक परम्परा के हजारों तापस संन्यासी उस समय विद्यमान थे किन्तु किसी ने संघ की विधिवत् स्थापना की हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। यहाँ तक कि तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परम्परा के भी अनेक श्रमण विविध समूहों में इधर उधर जनपदों में विचरते थे और उनका भी कोई एक व्यवस्थित संघ नहीं था। इस दृष्टि से भगवान् महावीर द्वारा धर्म संघ की स्थापना आम जनता की दृष्टि में एक अनोखी और नयीन घटना थी। उनकी विनय-प्रधान और आत्मानुशासन की आधार भूमि लोगों में और भी आश्चर्य उत्पन्न करती थी। उस धर्म संघ में जब स्त्रियों को भी पुरुषों के समान स्थान, सम्मान और ज्ञान का अधिकार मिला, तो संभवतः युग-चेतना में एक नई क्रांति मच गई होगी। आर्या चन्दनबाला के नेतृत्व में जब अनेक राज-रानियाँ, राजकुमारियाँ और सद्गुहणियाँ दीक्षित होकर आत्मसाधना के कठोर मार्ग पर अग्रसर होने लगी तो चारों ओर सत्तत्र ही एक नया वातावरण बना, नारी जाति में ही नहीं, किन्तु पुरुष वर्ग में भी भगवान् महावीर के इस समता-मूलक शासन की ओर आकर्षण बढ़ा, आत्मसाधन की भावना प्रसर होने लगी और वे इस ओर गिंचे-निंचे साने लगे।

धर्म संघ की स्थापना कर भगवान् महावीर ने सर्वपथक राजगृह की ओर प्रस्थान किया। ११

धर्म प्रचार :

ग्यारह वर्षों का अध्ययन किया एवं विविध प्रकार के तप, यज्ञों में तपों तथा संन्यास की साधना कर मुक्ति प्राप्त की । १

भगवान् महावीर के जामाता राजकुमार जामातिका और पुत्री प्रियदर्शना ने भी भगवान् के चरणों में क्रमशः ५०० क्षत्रिय कुमारों तथा पण्डितों स्त्रियों के साथ दीक्षा ग्रहण की । २ यह भगवान् की केवलीचर्या का दूसरा वर्ष था ।

मृगावती की प्रव्रज्या :

यह घटना भगवान् के केवलीचर्या काल के आठवें वर्ष की है । वर्षाकाल के पश्चात् कुछ दिनों तक राजगृह में विराजकर भगवान् 'आनंभिया' नगरी में ऋषि भद्र पुत्र श्रावक के उत्कृष्ट व जघन्य देवायुष्य सम्बन्धी विचारों का सम-र्थन करते हुए कौशाम्बी पधारे और मृगावती को संकटमुक्त किया । क्योंकि मृगावती के रूप लावण्य पर मुरब् हो चण्डप्रद्योत उसे अपनी रानी बनाने के लिये कौशाम्बी के चारों ओर घेरा डाले हुए था । उदायन की लघुवय होने से उस समय चण्डप्रद्योत को भुलावे में डालकर रानी मृगावती ही राज्य का संचालन कर रही थी । भगवान् के पधारने की बात सुनकर वह वन्दन करने गई और त्याग-विरागपूर्ण उपदेश सुनकर प्रव्रज्या लेने की उत्सुक हुई और बोली—“भगवन् ! चण्डप्रद्योत की आज्ञा लेकर मैं श्रीचरणों में प्रव्रज्या सेना चाहती हूँ ।” उसने वहीं पर चण्डप्रद्योत से जाकर अनुमति के लिये कहा । चण्डप्रद्योत भी समा में लज्जावश मना नहीं कर सका और उसने अनुमति प्रदान कर सत्कारपूर्वक मृगावती को भगवान् की सेवा में प्रव्रज्या प्रदान करवा दी । भगवत् कृपा से मृगावती पर आया हुआ शील संकट सदा के लिये टल गया । ३

केवलीचर्या का तेरहवां वर्ष :

वर्षाकाल की समाप्ति के पश्चात् भगवान् चम्पा पधारे और वहाँ के 'पूर्ण-भद्र' उद्यान में विराजमान हुए । चम्पा में उस समय 'कोणिक' का राज्य था ।

(१) १. ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर, पृ० २६६

२. भगवतीशतक, ६।३३।३८०, ६।६।३८२

(२) १. भगवती शतक, ६।३३।३८४, ६।३।६

२. त्रिपिटि, १०।८।३६

(३) (i) ऐति. काल के तीन तीर्थं; पृ० २७६, (ii) आब. प्र., पृ. १ पृ. ६१

मनु द्वारा आयुर्द्धि की योजना :

जब भगवान् महावीर के परिनिर्वाण का समय निकट आया तो शकेन्द्र का भाग्य प्रकटित हुआ। यह देव-परिवार मलिन नहीं उपस्थित हुआ। उसने भगवान् महावीर को नम्र निवेदन करी हुए कहा—“भगवान् ! आपके गर्भ, जन्म, पोषा और केवलज्ञान में उत्तरोत्तर वृद्धि थी। इस समय तुममें भगवत् संकलित होने वाला है। यह वह आपके जन्म नक्षत्र में आकर दो हजार वर्षों तक आपके जिन शासन के प्रभाव के उत्तरोत्तर विकास में अत्यधिक बाधक होगा। दो हजार वर्षों के बाद जब वह आपके जन्म नक्षत्र से अलग होगा, तब श्रमणों का, निर्ग्रन्थों का उत्तरोत्तर पुनः विकास होगा। उनका सत्कार और सम्मान होगा। एतदर्थ जब तक वह आपके जन्म नक्षत्र में संक्रमण कर रहा है, तब तक आप अपना आयुष्य बल स्थिर रखें, आपके प्रबल प्रभाव से यह संकलित निष्फल हो जायगा।”

भगवान् ने कहा—“शक्र ! आयुष्य कभी बढ़ाया नहीं जा सकता। ऐसा न कभी हुआ है और न कभी होगा। दुःप्रभा काल के प्रभाव से जिन शासन में जो बाधा होती है। वह तो होगी ही।”²

धर्म-परिवार :

गणधर एवं गण	—	११ गणधर एवं ६ गण
केवली	—	७००
मनःपर्यवज्ञानी	—	५००
अवधिज्ञानी	—	१३००

१. (१) ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर पृ. ३०४

(२) त्रिपट्टि; १०।१०.

२. भगवान् महावीर : एक अनु०, पृ० ५६७-६८

गौतम को केवलज्ञान :

भगवान् महावीर ने परिनिर्वाण के पूर्व ही अपने प्रथम शिष्य अश्वजिती गौतम को देव जगत् का शासन को प्रतिबोध देने के लिये दुमर स्थान पर भोजन दिया। इसका कारण यह था कि निर्वाण के समय वह शक्ति का स्वाहाकृत न हो। देव-जगत् को प्रतिबोध देकर दुमरभूति गौतम जाते थे किन्तु रात्रि होने में लौट नहीं सके। जब गौतम को भगवान् के परिनिर्वाण के समाचार प्राप्त हुए तब उनके श्रद्धा स्थिरता हृदय पर व्यापार-गा प्रसार भया। उनके हृदय के तार झनझना उठे — "भगवान् ! आप सर्वज्ञ थे फिर यह क्या किया ? अपने अंतिम समय में मुझे अपने से दूर क्यों किया ? क्या मैं आपकी भाति अचल पकड़कर आपको रोकता ? क्या मेरा स्नेह सज्जा नहीं था ? क्या मैं आपके साथ ही जाता तो यही का स्थान रोकता ? अब मैं किसके चरणों में नमस्कार करूँगा और अपने मन की दांकाओं का सही समाधान करूँगा ? अब मुझे कौन गौतम ! गौतम कहकर पुकारेगा ।"

भाव विह्वलता में बहुते बहुते गौतम ने अपने आपको संभाला, चित्तन बदला, यह मेरा कैसा मोह है ? भगवान् तो यांतराग हैं, उनमें कहां स्नेह है, यह मेरा एक पक्षीय मोह है, मैं स्वयं उस पक्ष का पक्षिक क्यों न बनूँ ? इस प्रकार चित्तन करते हुए उसी रात्रि के अन्त में स्थित प्रज्ञ हो गौतम ने क्षणमात्र में मोह को क्षीण किया, केवलज्ञान के दिव्य आलोक से अन्तरलोक आभासित हो उठा । २

दीपोत्सव :

जिस रात्रि को भगवान् का परिनिर्वाण हुआ, उस रात्रि को नौ मल्लकी,

१. (१) भगवान् महावीर : एक अनु०, पृ० ५६८-६६

(२) ऐति० काल के तीन तीर्थंकर, पृ० ३३४ से ३३६

२. भगवान् महावीर : एक अनु०, पृ० ५६६-६००

३८	५२२	नामग्या
३९	५२१	मिगिला
४०	५२०	मिगिला
४१	५२६	राजगृह
४२	५२८	अपापापुरी (पावा)

- ४ वास्तव में भगवान् महावीर का निर्वाणकाल ईस्वी पूर्व ५२८, नवम्बर तदनुसार विक्रम पूर्व ४७१ तथा शक पूर्व ६७५ वां ५ मास में हुआ । किन्तु चूंकि नवम्बर, वर्ष का ११ वां महीना था, अतः सन् ५२८ ई० पू० पूर्ण हो रहा था, अतः गणना में गुविघा की दृष्टि से महावीर का निर्वाण काल ई० पू० ५२७ तथा वि० पू० ४७० मान लिया गया है । देखें-वीर निर्वाण संवत् और जैनकाल गणना (मुनि कल्याण विजयजी) तथा आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन (मुनि नगराजजी) पृ० ६५।१

विशेष :

जैनधर्म में दश आश्चर्य माने गये हैं । इन दश आश्चर्यों में से आधे अर्थात् पांच आश्चर्य भगवान् महावीर के समय घटित हुए । यह भी अपने आप में एक आश्चर्य ही है । भगवान् महावीर के समय जो पांच आश्चर्यजनक घटनाएँ घटित हुईं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:-

१. गर्भहरण :

तीर्थंकर का गर्भहरण नहीं होता पर श्रमण भगवान् महावीर का हुआ । इस विषय में पूर्व में प्रकाश डाला जा चुका है ।

२. चमर का उत्पात :

पूरण तापम का जीव अगुरेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ । इन्द्र बनने के बाद उसने अपने ऊपर शकेन्द्र को मिह्रासन पर दिव्य भोगों का उपभोग करते देखा और उसके मन में विचार हुआ कि इसकी शोभा को नष्ट करना चाहिये । भगवान् महावीर की शरण लेकर उसने सौधर्म देवलोक में उत्पात मचाया इस

५ सुधर्मा :

इनके पिता का नाम धम्मिल्ल और माता का नाम महिला था। ये कोल्लागसन्निवेश के वैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। जन्मान्तर विषयक अपनी शंका का समाधान पाकर इन्होंने भगवान् महावीर के पास अपने पांच सौ शिष्यों सहित दीक्षा ग्रहण की। भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् संघ व्यवस्था का नेतृत्व आपके पास रहा। भगवान् महावीर के निर्वाण के बीस वर्ष पर्यन्त तक ये संघ की सेवा करते रहे। बयालीस वर्ष तक छद्मस्थावस्था में रहकर केवलज्ञान प्राप्त किया और आठ वर्ष तक केवलीचर्या में रहकर धर्म प्रचार किया। आपने पचास वर्ष गृहस्थावस्था में व्यतीत किये थे। इस प्रकार कुल एक सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर राजगृह के गुणशील चैत्य में एक मास के अनशन से निर्वाण प्राप्त किया।

६ मंडित :

इनके पिता का नाम धनदेव और माता का नाम विजयादेवी था। ये मौर्य सन्निवेश के वसिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण थे। इन्होंने ५३ वर्ष की आयु में अपने तीन सौ पचास शिष्यों के साथ भगवान् महावीर की सेवा में मात्मा का सांसारित्व समझकर दीक्षा स्वीकार की। चौदह वर्ष तक छद्मस्थावस्था में रहकर केवलज्ञान प्राप्त किया। सोलह वर्ष तक केवलीचर्या में विचरण कर तिरासी वर्ष की आयु में गुणशील चैत्य में अनशनपूर्वक निर्वाण को प्राप्त हुए।

७ मौर्यपुत्र :

इनके पिता का नाम मौर्य और माता का नाम विजयादेवी था। ये काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे और मौर्य सन्निवेश के निवासी थे। देवलोक मन्त्रन्धी शंका का समाधान होने से इन्होंने अपने तीन सौ पचास शिष्यों के साथ पैंसठ वर्ष की आयु में भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की। चौदह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहकर केवलज्ञान प्राप्त किया। १९ वर्ष केवलीचर्या में रहकर भगवान् महावीर के मगध ही ६५ वर्ष की आयु में अनशनपूर्वक गुणशील चैत्य में मुक्ति प्राप्त की।

सौमित्र वर्ण की आयु में अपने जैन गौ निवास के साथ भगवान् महावीर के पास दीक्षा प्राप्त की। सात वर्ष पदमस्तवस्था में रहकर केवलज्ञान प्राप्त किया और सौमित्र वर्ण तक केवलजीवर्ण में विचरकर चालीस वर्ष की आयु में भगवान् महावीर के समक्ष ही राजगृह के गुणशील चैत्य में एक मास के अवसर्जन में निर्वाण को प्राप्त हुए। समस्त कम आयु में दीक्षित होकर केवलज्ञान प्राप्त करने वाले आप ही एक मात्र गणधर हैं।

विशेष :

भगवान् महावीर के सभी गणधर ज्ञान के ब्राह्मण और प्रकाण्ड विद्वान् थे। सभी का निर्वाण राजगृह के गुणशील चैत्य में हुआ।

आम तौर पर एक भ्रम यह है कि छठे गणधर मंडित और सातवें गणधर गौर्यपुत्र सहोदर थे। यह भ्रम दोनों की माता के एक ही नाम को लेकर उत्पन्न हुआ है। वास्तविकता यह है कि ये दोनों सहोदर नहीं थे। दोनों की माता का एक ही नाम होना मात्र संयोग है। दोनों के पिता के नाम तो भिन्न भिन्न हैं। विजया नामक दो भिन्न महिलाएँ थीं।

सती-परिचय :

जैन धर्म में प्रमुख रूप से सोलह सतियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सोलह सतियों के अतिरिक्त और भी सतियां हुई हैं जिनका भी अपना विशेष स्थान है। यहां भगवान् महावीरकालीन प्रमुख सतियों का संक्षेप में परिचय देने का प्रयास किया जा रहा है।

१ महासती प्रभावती :

वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष चेटक की सात पुत्रियों में से एक थी और इनकी गणना सोलह सतियों में की जाती है। प्रभावती का विवाह सिधु-सौवीर के प्रतापी राजा उदायन के साथ हुआ था। प्रभावती की भगवान् महावीर के प्रति अटल आस्था थी।

भगवान् महावीर के प्रवचन पीयूष का पान करने के उपरांत प्रभावती का विचार दीक्षा ग्रहण करने का हुआ। यद्यपि वैराग्यभाव बाल्यकाल से ही थे किन्तु भगवान् के प्रवचन से ये भाव और पुष्ट हुए। वैराग्य भावना के प्रभाव के कारण प्रभावती का मन सांसारिक भोगों के प्रति आसक्त नहीं रहा। इसी

कालांतर में पद्मावती ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसे श्मशान के निकट के वृक्ष के नीचे छोड़ दिया। यही बालक श्मशान रक्षक चांडाल के हाथों पड़ा और उसी के यहां पला-पोसा भी। चांडाल उसे दिनभर हाथ से शरीर खुजलाते देखता था इस कारण प्रेम से उसे 'करकंडू' नाम से पुकारने लगा। वस उसका यही नाम प्रसिद्ध हो गया।

यही करकंडू बाद में कंचनपुर नामक राज्य का राजा बना और किसी प्रसंग को लेकर महाराज दधिवाहन ने कंचनपुर पर आक्रमण कर दिया। इधर करकंडू भी युद्ध के लिये तैयार हो मैदान में आ गया।

जब इस युद्ध का समाचार साध्वी पद्मावती को मिला तो उसने इस भयंकर घटना को टालने के लिये पिता-पुत्र के बीच रहस्य के पर्दे का अनावरण कर एक भयंकर घटना को टाल दिया। पिता-पुत्र गले मिल गये। करकंडू अपने वास्तविक माता पिता के दर्शन कर स्वयं को कृत-कृत्य मान रहा था।

पद्मावती अपना कर्त्तव्यपूर्ण कर अपने धर्मस्थान को लौट आई। उसकी प्रेरणा से न केवल संकट टला वरन् दोनों देशों के बीच स्नेह एवं शांति की रस-धारा प्रवाहित हो चली। स्नेह एवं शांति की सूत्रधार महासती पद्मावती की जय जयकार की ध्वनि चारों ओर गूंज उठी।

३ महासती मृगावती :

मृगावती महाराज चेटक की तृतीय पुत्री थी। मृगावती की गणना भी सोलह सतियों में की जाती है। मृगावती कोशाम्बी के राजा शतानीक की रानी थी।

रानी मृगावती के चित्र को देखकर अवंती नरेश चण्डप्रद्योत ने शतानीक के पास अपने दूत को भेजकर मृगावती की मांग की। शतानीक ने चण्डप्रद्योत की मांग अस्वीकार कर दी तो उसने कोशाम्बी पर आक्रमण कर दिया। शतानीक इस आक्रामक आक्रमण से इतना भयभीत हो गया कि उसकी हृदयगति बंद हो गई। इस विपत्ति काल में सती नारी मृगावती ने धर्म से काम लिया। अनावरण पुत्र उदयन का संक्षण, राज्य की रक्षा आदि का भार अब उस पर था। इनने बढ़कर अपने धर्म को भी गुरदित रखा था। मृगावती ने चण्डप्रद्योत के पास समाचार भेजा कि अभी कोशाम्बी शोकग्रस्त है। अतुल्य

महत्ता चार मनमात्री तर्कों का शाय कर लेना । अर्थात् उन्हें भी केवलज्ञान की उपलब्धि हो गई ।

जब तीनों ने सुना कि एक ही रात्रि में दो दो महाशक्तियों को केवलज्ञान की उपलब्धि हुई है तो लोग उनके दर्शनार्थ उभर पड़े ।

४ महासती चन्दनवाला :

महासती चन्दनवाला का परिचय पूर्व पृष्ठों में भगवान् महावीर के घोर अभिग्रह के अन्तर्गत दिया जा चुका है । चन्दनवाला अपरिणाम तृणमृति की कर्म कच्चा वर्तमान युग में भी अनेक महदय कर्मों और कथाकारों की लेगनी का प्रिय विषय बनी हुई है । इस महासती के माता-पिता के सम्बन्ध में कुछ मतभेद हैं किन्तु नाम, जीवन की घटनाओं एवं प्रेरक पुण्य-चरित्र के सम्बन्ध में सभी एकमत हैं । उस चन्दन रस जैसी कोमल किन्तु काष्ठ जैसी कठोर, अतीव सुन्दरी कोमलांगी तथापि बीरवाला का कीमार्गकान में आततायियों द्वारा अपहरण हुआ । अनेक मर्मन्तिक कष्टों के बीच में गुजरते हुए अन्ततः अनाम, अजाति, अज्ञात-कुला क्रीतदासी के रूप में भरे बाजार उसका विक्रय हुआ । क्रय करने वाले कौशाम्बी के सेठ धनदत्त के स्नेह और कृपा का भाजन बनी तो सेठ पत्नी मूला के डाह और अमानुषिक अत्याचारों की शिकार हुई । अंत में जब वह मुंडे सिर, जीर्ण-शीर्ण अल्पवस्त्रों में, लोह शृंखलाओं से बंधी, कई दिन कि भूखी-प्यासी, एक सूप में अध-उबले उड़द के कुछ वाकले लिये, जीवन के कटु सत्यों की जुगाली करती हवेली के द्वार पर खड़ी थी कि भगवान् महावीर के अतिदुर्लभ दर्शन प्राप्त हो गये । दुस्साध्य अभिग्रह लेकर वह महातपस्वी साधु लगभग छह माह से निराहार विचर रहा था । अपने अभिग्रह की पूर्ति उस वाला की उपर्युक्त वस्तुस्थिति में होती दिखाई दी और महामुनि उसके सम्मुख आ खड़े हुए । चन्दना की दशा अनिवर्चनीय थी, महादरिद्री अनायास चितामणि रत्न पा गया, भक्त को भगवान्, मिल गये, वह धन्य हो गई । हर्ष-विषाद मिश्रित अद्भुत मुद्रा से उसने वह अति तुच्छ भोज्य प्रभु को समर्पित कर दिया, उनके सुदीर्घ अनशन व्रत का पारणा हुआ, दिव्य प्रगट हुए, जनसमूह इस अद्वितीय दृश्य को देखकर विस्मय-विभूत था । और चन्दना उसका तो उद्धार हो गया । साथ ही समाज का कोढ़ उस घृणित दास-दासी प्रथा का भी उच्छेद हो गया । गुणों के सामने जाति, कुल, अभिजात्य-आदि की महत्ता भी समाप्त हो गयी । चन्दना तो पहले से ही भगवान् की भक्त थी अब उनकी

करती किन्तु सुलसा की नीति परक धर्मप्रधान बातों से नाग संतुष्ट होकर धर्मध्यान में लग जाया करता था ।

जब सुलसा की कीर्ति-पताका देवसभा में भी फैलने लगी तो एक देव ने सुलसा की परीक्षा लेने का विचार किया ।

एक दिन सुलसा के घर एक मुनि मिथ्यार्थ आये और कहा कि एक साधु बीमार है जिसके लिये लक्षपाक तैल की आवश्यकता है । सुलसा ने प्रसन्न मन से साधु के उपचारायं तैल देने के विचार से कमरे में जाकर तैल का घड़ा उठाया कि वह हाथ से छूट गया और बहुमूल्य तैल चारों ओर बिखर गया । उसने दूसरा घड़ा उठाया वह भी हाथ से छूट कर फूट गया फिर उसने तीसरा घड़ा उठाया, बाहर निकाला किन्तु बाहर लाते ही वह भी फूट गया । इतना होने पर भी सुलसा ने धैर्य नहीं छोड़ा । मुनि का मन उदास हो गया । सुलसा न उदास हुई और न ही क्रोधित । वह शान्त बनी रही तथा मुनि से निवेदन किया कि मुनिवर आज मेरे भाग्य में सुपात्र दान नहीं लिखा है मेरे कर्म बाधक बन रहे हैं । मुझे दुःख है कि मेरे पास औषधि होते हुए भी बीमार मुनि के काम न आ सकी । आपको भी व्यर्थ ही मैं कष्ट हुआ ।

मुनि ने देखा कि इतनी हानि होने पर भी सुलसा के मन में धैर्य और शांति है तब वह अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुआ । वह मुनि और कोई न होकर देवसभा का देव था जिसने सुलसा की परीक्षा लेने का विचार किया था । देव ने देवसभा में सुलसा की प्रशंसा वाली बातें बताते हुए उसके धैर्य, धर्मेनिष्ठा की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए उसे वर मांगने को कहा । सुलसा ने अपने जीवन के अभाव की चर्चा करते हुए कहा कि संतान न होने से मेरे पति सदैव चिंतित रहते हैं । यदि मेरी यह कामना पूर्ण हो सके तो मुझे प्रसन्नता होगी । इस पर देव ने सुलसा की बत्तीस गोत्रियां प्रदान की जिनके प्रयोग से सुलसा को बत्तीस पुत्रों की प्राप्ति हुई । सुलसा के ये बत्तीस ही पुत्र राजा श्रेणिक के चक्रवर्ति के अपहरण प्रसंग के अवसर पर मृत्यु को प्राप्त हुए । सुलसा ने इस भयानक शोक में भी अपने आपको सम्माले रखा । यह सोचकर कि जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य होगी । उसने धैर्यपूर्वक इस त्रिरति को मद्भन किया ।

जैन धर्म में जिन सोलह महान् नारियों की गाथा है वह जैन इतिहास में सोलह सतियों के नाम में प्रसिद्ध है। प्रत्येक जैन इन सतियों के नाम स्मरण कर अपने आपको धन्य अनुभव करता है। सतियों के नाम स्मरणार्थ निम्न-लिखित श्लोक अत्यधिक प्रसिद्ध है।

ग्राह्णी, चंदनवालिका भगवती राजीमती द्रौपदी ।
 कौशल्या च मृगावती च मूलमा, सीता सुभद्रा शिवा ।
 कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता चूला प्रभावत्यहो ।
 पद्मावत्यपि सुन्दरी दिन मुने कुर्वन्तु वो मंगलम् ।

तत्कालीन राज-पुरूष :

भगवान् महावीर के समकालीन अनेक राजा-महाराजाओं और उनके मंत्री आदि राजपुरूषों का साक्षात् रूप में भगवान् महावीर से सम्बन्ध था। यदि भगवान् महावीर के अनुयायी राजपुरूषों की सूची बनाई जावे और उस पर लिखा जावे तो यह भी एक अच्छे ग्रन्थ का रूप ले सकता है। यहां ऐसे ही कुछ सुप्रसिद्ध राजपुरूषों का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया जा रहा है, जो भगवान् महावीर के अनुयायी थे।

१. महाराजचेटक :

चेटक जैन परम्परा में दृढ़धर्मी उपासक माने गये हैं, वे भगवान् महा-
 महासतियों का विवरण निम्नांकित पुस्तकों पर आधारित है।

(१) जैन कयामाला, भाग २ व ३, श्री मधुकर मुनि

(२) प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरूष और महिलायें

४ महाराजा उदायन :

भगवान् महावीर के परममहत्त्व नामक ग्रन्थों में मिथु मीरीर देश के मत्तिगानी एवं लोकप्रिय महाराजाजिन उदायन का पर्याप्त उल्लेख है। उनके राज्य में मोनद नदी नदी जनपद थे, ३६३ नगर तथा चामी ही मन्त्रि पदाधी की बड़ी बड़ी मदानें थी। दश पुत्र-मुकुटधारी नरेश और अनेक छोटे भूपति, मामन्त्र, सरदार, सेठ साहुकार एवं मार्गनाह उनकी सेवा में रत्न रहते थे। राजधानी रोदक नगर और नाम वीतभव पत्तन एक निजाम, सुन्दर एवं वैभवपूर्ण महानगर तथा भारत के पश्चिमी तट का महत्वपूर्ण बंदरगाह था। उसका नाम 'वीतभव' इसीलिये प्रसिद्ध हुआ कि महाराज उदायन के उदार एवं न्याय-नीतिपूर्ण गुणासन में प्रजा सभी प्रकार के भय से मुक्त हो सुख और शांति का उपभोग करती थी। इतने प्रतापी और महान् नरेश होते हुए भी महा राज उदायन अत्यन्त निरभिमानी, विनयशील, साधु-सेवी और धर्मानुरागी थे। उनकी महारानी का परिचय ग्रन्थ में दिया जा चुका है। कहा जाता है कि महारानी की उत्कट धर्मनिष्ठा से प्रभावित होकर ही महाराज ऐसे धर्म-निष्ठ बने थे। महारानी प्रभावती ने अपने राज्य में किसी स्वधर्मी को स्वा-नीय एवं उत्तरदेणीय भी जो अपने यहां किसी कार्यवश आया हुआ हो उसको किसी भी प्रकार की अमुविधा न हो ऐसी समुचित व्यवस्था कर रखी थी।

भगवान् महावीर के अपने नगर में पधारने पर राजा-रानी और पूरा परिवार तथा पार्षद एवं प्रजाजन भगवान् के समवमरण में पहुंचे और उपदेशा-मृत का पान किया जिससे प्रभावित होकर श्रावक धर्म स्वीकार किया। साधुओं की सेवादि में उन्हें विशेष आनंद आता था। वे आदर्श भक्त थे। उन्होंने भी अन्त में दीक्षाव्रत अंगीकार कर लिया था।

५ महाराज श्रेणिक :

महाराज श्रेणिक का अपरनाम विम्बसार अथवा भम्मासार इतिहास प्रसिद्ध शिशुनागवंश के एक महान् यशस्वी और प्रतापी नरेश थे। बाहीक प्रदेश के निवासी होने के कारण उन्हें बाहीक कुल का भी कहा गया है।

भगवान् के शासन में श्रेणिक और उसके परिवार का धर्म-प्रभावना में जितना योग रहा उतना किसी अन्य राजा का नहीं रहा ।

६ मंत्रीश्वर अभयकुमार :

महाराज श्रेणिक के सुशासन, उत्तम राज्य व्यवस्था, स्पृहणीय न्याय शासन, समृद्धि, वैभव एवं राजनयिक संघर्ष का श्रेय अनेक ग्रंथों में उनके इतिहास-विश्रुत, वृद्धि विधान मंत्रीश्वर अभयकुमार को है । अभयकुमार द्रविड़देशीय ब्राह्मण पत्नी नन्दश्री से उत्पन्न उनके ही ज्येष्ठ पुत्र थे । एक अन्य मतानुसार अभय की माता नंदा या नंदश्री दक्षिण देश के वैयातट नामक नगर के घनावह नामक श्रेष्ठ की पुत्री थी । कुछ भी हो अभयकुमार की ऐतिहासिकता में किसी प्रकार का संदेह नहीं है ।

जैन इतिहास में अभयकुमार की भगवान् महावीर के परमभक्त, एक धर्मात्मा, शीलवान, संयमी श्रावक होने के अतिरिक्त एक अत्यन्त मेधावी, अद्भुत प्रत्युत्पन्न मति, न्याय शासन दक्ष, विचक्षण बुद्धि, कुटनीतिक, विशारद राजनीति पटु, प्रजावत्सल, अतिकुशल प्रशासक एवं आदर्श राज्य मंत्री के रूप में ख्याति है । जब जब भी राज्य पर कोई भी संकट आया, अभयकुमार ने अपने बुद्धि बल से अपने राज्य के धन जन और प्रतिष्ठा की तुरन्त और सफल रक्षा की । वे वेश बदलकर जनता के बीच जाते और विभिन्न मूखनाएं प्राप्त करते, पटयन्त्रों को विफल करते, जनता के संतोष-असंतोष का पता लगाते, न्यायिक जांच करते थे ।

इतने बड़े राज्य का शक्ति सम्पन्न महामंत्री तथा महाराज का ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी राज्य विपत्ता उमे दू भी नहीं गई थी । ये अत्यन्त धार्मिक वृत्ति के थे । अभयकुमार ने दोषा की आशा अपने पिता राजा श्रेणिक ने बुद्धिबल से प्राप्त कर भगवान् महावीर के पाग दोषा ग्रहण की और विजय अगुत्तर विमान में उत्पन्न हुए ।

महाराज श्रेणिक के अन्य पुत्रों में से कृष्णिक के अनिलिन मेघकुमार, नन्दिदेव और वारिदेव के चरित्र विशेष प्रसिद्ध हैं । सर्वप्रकार के देश-दुर्लभ वैभव में पले, वे भी विपन्न भागों में गले थे कि भगवान् महावीर के उपदेशों

कूणिक की रानियों में पद्मावती, धारिणी और गुमद्रा प्रमुख थीं ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि उसने आठ राजकुमारियों से विवाह किया था, उदाई महारानी पद्मावती से उत्पन्न उसका पुत्र था, जो उसके बाद सिंहासन पर बैठा। इसी ने चम्पा से राजधानी पाटलीपुत्र स्थानान्तरित की थी।

चेलना के सत्संग ने, संस्कारों ने कूणिक के मन में भगवान् महावीर के प्रति अटूट भक्ति भर दी थी।

भगवान् महावीर के चम्पानगरी में आगमन की सूचना लाने वाले संवाददाता को वह एक लाख आठ हजार रजत मुद्राओं का प्रीतिदान दिया करता था।

कूणिक का वैशाली गणतंत्र के शक्तिशाली महाराजा चेटक के साथ भीषण युद्ध हुआ था। उस युद्ध के कारण हुए नरसंहार में एक करोड़, अस्सी लाख लोग मारे गये थे। इस युद्ध में महाशिला कंटक युद्ध और रथमूसल संग्राम अधिक प्रसिद्ध हैं। छलबल से कूणिक ने वैभवशाली वैशाली में अपनी सेना के साथ प्रवेश कर उसके वैभवशाली भवनों को भंग कर दिया। वैशाली भंग होने के समाचार को सुनकर महाराज चेटक ने अतःशनपूर्वक प्राण त्याग कर दिये और वे देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुए।

भगवती मूर्त और निरयावलिका में दिये गये इस युद्ध के विवरणों से प्रमाणित हो जाता है कि युद्ध में आधुनिक युग के प्रक्षेपास्त्रों और टैंकों से भी अति भीषण संहारकारक महाशिलाकंटक और रथमूसल अस्त्र थे।

महाशिला कंटक अस्त्र और रथमूसल यन्त्र के कारण उस समय कूणिक की धाक चारों ओर जम गई थी। उसके समक्ष प्रतिरोध करने का साहस तत्कालीन नरेशों में से कोई भी नहीं कर सका। कूणिक अनेक देशों को अपने अधीन करता हुआ तिमिस्र गुफा के द्वार तक पहुंच गया। अष्टम भक्त कर कूणिक ने तिमिस्र गुफा के द्वार पर दण्ड प्रहार किया। यहीं गुफा के द्वार-रक्षक देव ने क्रुद्ध होकर हुंकार की और कूणिक तत्काल वहीं भस्मगात् हो गया। मरकर वह छट्ठे नरक में उत्पन्न हुआ।

भगवान् महावीर का भक्त होने हुए भी वह तीव्र लोभ के उदय से पथभ्रष्ट

एक बार भगवान् महावीर चम्पावनगरी पधारे । राजा एवं पञ्चाजन भगवान् की वंदना हेतु जाने लगे । कामदेव ने इस प्रकार जनता को भाने देना इसका कारण जानना चाहा तो उसे विरहित हुआ कि भगवान् महावीर पधारे हुए हैं । भगवान् के पादमन का समाचार सुनकर उसका मन पुलकित हो उठा । वह भी भगवान् महावीर के समनसरण में जा पहुँचा ।

भगवान् के समनसरण में चारों ओर सम्पत्ति-रस की धारा बह रही थी । भगवान् महावीर का स्वागत एवं संगम मुक्त प्रव्रजन पीमूष का पान-पार कामदेव ने श्रावक धर्म स्वीकार कर लिया ।

एक दिन कामदेव ने घर का भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप दिया और उसकी अनुमति लेकर स्वयं निवृत्त हो पीपघणाला में चला गया । पीपघणाला में भगवान् को वन्दना कर विशेष समाधि और ध्यान योग में लीन हो गया । ध्यान की स्थिरता में जब चेतना लीन हो गई तो वह शरीर का भान भी भूल गया । कायोत्सर्ग दशा में स्थित हो आत्मरमण करने लगा । यहीं कामदेव की परीक्षा भी हुई जिसमें वह सफल हुआ ।

प्रातःकाल उसे शुभ समाचार मिला कि भगवान् महावीर चम्पा में पधारे हैं । कामदेव ने सर्वप्रथम भगवान् की सेवा में पहुँचकर उनकी वंदना की । भगवान् महावीर ने अपनी सभा में कामदेव को उपस्थित देखकर उसकी अविचल श्रद्धा की प्रशंसा की और रात्रि की घटना का वर्णन भी किया । साथ ही उन्होंने कहा कि गृहवास में रहने वाला श्रमणोपासक देव, मनुष्य और तिर्यन्च सम्बन्धी भयानक उपसर्गों में भी प्राणों की बाजी लगाकर अपनी धर्म-श्रद्धा में अविचल रहता है । इससे कामदेव की सभी प्रशंसा करने लगे ।

कामदेव श्रावक जीवन के अन्तों में और भी प्रगतिशील बना और उसने क्रमशः श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना की । अन्तिम समय में शुद्ध

एक बार भगवान् महावीर पारसिकी पधारे । मुगलान् सोरठा धौन में भगवान् के दर्शनार्थ गया । भगवान् की दिया वाली मुगलान् अपने श्रावक धर्म स्वीकार दिया । पत्नी की पेरणा भगवान् भगवान् ने भी श्रावक धर्म काण दिया और धर्मारोपना में लग गया ।

एक दिन उसने घर का सब भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप दिया और स्वयं पीपधमाला में आकर श्रावक धर्म की साधना रूप स्नायनाय, स्नान, प्रति-क्रमण-पीपय एवं कार्यात्मर्ग में समग्र लगनीय करने गया ।

अपनी धर्म-साधना में मुगलान् मायावी देव द्वारा सजा गया । मुगलान् को अपनी भूल पर बड़ा पदनायाप हुआ । अपनी भूल पर उसने पचनाताप न आलोचना की । जीवन की अंतिम परिस्थितियों में वह पूर्ण निवेद भाव की साधना में रमण करने का प्रयास करता रहा । श्रावक प्रतिमाओं की आराधना करता हुआ अन्त में समाधिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुआ और सौधमं कल्प में समृद्धिधानी देव बना ।

५ श्रावक चुल्लशतक :

चुल्लशतक आलंभिका नगरी का निवासी था और अपार धन-वैभव का स्वामी था । उसकी पत्नी का नाम बहुला था । वह बड़ी धर्म प्रिय और आदर्श पतिव्रता थी ।

एक बार भगवान् महावीर आलंभिका नगरी पधारे । नागरिकों के साथ चुल्लशतक भी भगवान् के दर्शन करने गया । भगवान् के उपदेश से प्रभावित होकर उसने श्रावक के द्वारह्व्रत ग्रहण किये । उसकी पत्नी भी श्राविका बन गई ।

कुछ वर्ष बाद चुल्लशतक ने सब भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप दिया और निवृत्ति लेकर एकांत में धर्म साधना में लीन हो गया । जैसा कि होता है—व्यक्ति जब पूर्ण निष्ठा के साथ यदि किसी शुभ कर्म में प्रवृत्त होता है तो उसमें बाधाएँ आती ही हैं । चुल्लशतक के साथ भी ऐसा ही हुआ । वह भी धन और पुत्रों की भाँया में फँसकर छला गया । इस पर उसे पर्याताप हुआ और अपनी कमजोरी को दूर करने का संकल्प कर पुनः धर्मारोपना में जुट गया । उसने

एक प्रत्यक्ष भी देखा गया। विषयक ज्वरी की बीम रमने पहले ही से ज्वरी भावक के मांस पर प्रकाश करने लगे तथा अतिरिक्त अतिरिक्त प्रकाश की गर्मीयों को प्रोत्साहित किया। यह साकार ज्वरीयों को ज्वर से ज्वर गुणाया भी यह भी आनन्दित हो गयी और भयानक के अर्थ लिये, देखा गया बीम और फिर स्वास्त्र के द्वारा यहाँ को प्रकाश किया।

अपनी भूमि साधना में एक बार वह अवकाश बना । फिर पत्नी अग्निमित्रा की प्रेरणा में योगा द्वारा भी प्राप्त किया । मन में पत्नी के प्रति जो अनुराग को दूर करते हुए, मन को सुदृढ़ किया । पारस्य प्रतिमाओं का आचरण करते हुए अंतिम समय में श्वासन कर समाधिपूर्वक देह त्याग कर वह शोधन-कल्प में देवता बना ।

८ श्रावक महाशतक :

महाशक्त राजगुरु का निवासी था। यह समृद्ध और प्रतिष्ठित गायपति था। उसके तेरह पत्नियाँ थी, जिनमें रेवती प्रमुख थी। महाशक्त विचारणीय, धर्म प्रिय एवं दात प्रकृति का गुरुस्थ था। 'सादा जीवन उच्च विचार' में ही उसका विश्वास था।

एक बार भगवान् महावीर राजगृह पधारे । महाशतक ने उनका धर्मोपदेश सुना और थावक के द्वादश व्यत स्वीकार किये । परिग्रह परिमाण करते समय रेयती आदि तेरह पत्नियों के अतिरिक्त अग्रहचर्य सेवन का त्याग किया । जीव-अजीव आदि तत्व का परिज्ञान कर वह संयम एवं श्रद्धापूर्वक जीवनयापन करने लगा ।

स्वच्छन्द रूप से पति के साथ भोग की इच्छा से रेवती ने अपनी बारह सौतों को समाप्त कर दिया । रेवती के दुष्ट स्वभाव का कारण — उसका मांस मदिरा सेवी होता था । मांस मदिरा के अधिक सेवन से उसकी प्रकृति और अधिक कामुक और क्रूर हो गई । एक बार राजा द्वारा प्राणी वध निषेध घोषित करने पर रेवती ने अपने ही गोकुल में से बछड़े मारकर खाने की व्यवस्था की । इससे बढ़कर उसकी मांस लोलुपता का उदाहरण और क्या हो सकता था

अंत में महाशक्त को रेवती की दुष्टता का पता चल ही गया । उसे अपनी पत्नी से घृणा हो गई । उसने पत्नी को समझाने का प्रयास भी किया किन्तु

१०२ : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

सौम्य का जन्म लगने थावक धर्म का निर्दोष पालन किया। पन्द्रहवें वर्ष में उसने घर का सब भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंपा और पौषधशाला में जाकर धर्म-आराधना में लीन हो गया। यही उसके मन में थावक की ग्यारह प्रतिमाओं का लाक्षण करने का सकल जागा। ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना में कुल ६६ माह लगते हैं। उसने यह कठोर तपश्चरण भी किया जिससे उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल और क्षीण हो गया।

जैन में एक माह की संलेखनापूर्वक देह छोड़कर वह सौधमंकल्प के अरुण-रत्न विमान में देव रूप में उत्पन्न हुआ।

१० थावक सालिहीपिता :

सालिहीपिता थावस्ती का निवासी था। वह बहुत ही श्रद्धा संपन्न और व्यवहारकुशल था। थावस्ती के ८ प्रमुख कोटिपतिवर्गों में उसकी गणना की जाती थी। उसकी पत्नी का नाम फाल्गुनी था। फाल्गुनी बड़ी धर्मशीला और सतिव्रता नारी थी।

एक बार भगवान् महावीर थावस्ती पधारे। नागरिकों के साथ सालिही-पिता भी उनके दर्शन करने गया। उपदेश सुनकर उसने बारह धर्तों को धारण किया। बाद में फाल्गुनी ने भी भगवान् की धर्मसभा में जाकर उपदेश सुना और धम्म धर्म स्वीकार किया।

एक दिन उसने ज्येष्ठ पुत्र को सब भार सौंप कर वह पौषधशाला में आराम और वहीं एकान्त में विविध प्रकार से ध्यान प्रतिक्रमण स्वाध्याय आदि करता रहा। उसने बनेक प्रकार की तपश्चर्याएँ भी की। थावक की ग्यारह प्रतिमाओं का आराधन किया। अंत में समाधिपूर्वक देह त्यागकर सौधमंकल्प के अरुण-रत्न विमान में देवता बना।

२५४ : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

२१. चउपन्न महापुरिस चरियं - णीलांकाचार्यं
२२. चौबीस तीर्थंकर : एक पर्यवेक्षण - श्री राजेन्द्र मुनि
२३. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
२४. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति - वृत्ति
२५. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति - श्री अमोलक ऋषि
२६. जैनागम स्तोक संग्रह - श्री मगनलालजी म०
२७. जैन धर्म - मुनि श्री सुशीलकुमारजी म०
२८. जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग - १ आ० श्री हस्तीमलजी म०
२९. जैन कथा माला भाग २, ३, ४ श्री मधुकर मुनि
३०. जैन साहित्य संशोधक
३१. ठाणांग सूत्र
३२. तत्त्वार्थ सूत्र
३३. तिलोप पण्णत्ति
३४. तीर्थंकर चरित्र भाग १, २, ३, श्री रतनलाल टोणी
३५. तीर्थंकर महावीर - श्री मधुकर मुनि व अन्य
३६. त्रिपट्टि शलाका पुरुष चरित्र
३७. दशवैतालिक सूत्र - अगम्य चूर्णि
३८. दशवैतालिक निर्युक्ति
३९. निर्यावतिका
४०. पटस चरियं
४१. पार्व्वेण्य चरित्र - मातदेव
४२. पार्व्वेण्य चरित्रम् - हेमचन्द्रभट्ट
४३. प्रबुद्ध भूति विमल जैन पुरुष जीव महाभाग - डॉ. जयानंदप्रसाद जैन
४४. भगवद्गीता
४५. भगवद्गीता

२५८ : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

६.	श्रीमान् अमोलकचन्दजी सिधवी	मद्रास	सियाट
१०.	„ राजमलजी मरलेचा	मद्रास	सोजत रोड
११.	„ कपूरचन्दजी भाई	मद्रास	सोराष्ट्र
१२.	„ सम्पतराजजी सिधवी	रायपुर	सियाट
१३.	„ फतेहचन्दजी कटारिया	बैंगलोर	देवलीकली
१४.	„ भंवरलालजी डूंगरवाल	मद्रास करमावास [मालिया]	
१५.	„ पारसमलजी सांखला	बैंगलोर	सांढिया
१६.	„ मोतीलालजी मूथा	बैंगलोर	रास
१७.	„ जुगराजजी वरमेचा	मद्रास	अटवडा
१८.	„ नथमलजी सिधवी	मद्रास	सियाट
१९.	„ केवलचन्दजी वापना	मद्रास	आगेवा
२०.	„ रिगवचन्दजी सिधवी	तिरुवेलोर	सियाट
२१.	„ मोहलालजी कोठारी	चिरंजीपुरम्	विरांटिया
२२.	„ भानीरामजी सिधवी	तिरुवेलोर	सियाट
२३.	„ चाँदमलजी कोठारी	बैंगलोर	रायपुर
२४.	„ घनराजजी बोहरा	बैंगलोर	ब्यायर
२५.	„ जंगलीमलजी भलगत	भंडारा	रीयां
२६.	„ भूमरमलजी भलगत	भंडारा	रीयां
२७.	„ हस्तीमलजी वर्णिमणोता	बैंगलोर	दासपा
२८.	„ रंगलालजी रांठा	पट्टाभिराम	कुशालपुरा
२९.	„ प्राणजीवन भाई	बम्बई	गोराष्ट्र
३०.	„ रमितलाल भाई	बम्बई	गोराष्ट्र
३१.	„ दांनिलाल भाई	बम्बई	गोराष्ट्र
३२.	„ रतनलाल भाई	बम्बई	गोराष्ट्र
३३.	„ जवाहरचन्दजी बोहरा	रत्नागिरी	रीयां
३४.	„ जोगलालजी बोहरा	रायटमणेट	ब्यायर

२६० : जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास

६१.	„ दुलीचन्दजी चौरडिया	मद्रास	नोखा
६२.	„ इन्द्रचन्द्रजी सिंघवी	मद्रास	सियाट
६३.	„ पारसमलजी वागचार	मद्रास	कुचेरा
६४.	„ जवाहरलालजी चौपड़ा	अमरावती	पीपाड़
६५.	„ शांतिलालजी गांधी	बम्बई	पीपाड़
६६.	„ देवीचन्दजी सिंघवी	मद्रास	सियाट
६७.	„ रतनलालजी बोहरा	केलशी	पीपाड़
६८.	„ पारसमलजी वोक्ड़िया	मद्रास	खांगटा
६९.	„ पूसालालजी कोठारी	खांगटा	खांगटा
७०.	„ अमरचन्दजी वोक्ड़िया	मद्रास	खांगटा
७१.	„ दीपचन्दजी वोक्ड़िया	मद्रास	खांगटा
७२.	„ केवलचन्दजी कोठारी	मद्रास	खांगटा
७३.	„ चैनमलजी सुराणा	मद्रास	कुचेरा
७४.	„ जुगराजजी कोठारी	मद्रास	खजवाणा

